# जेठवे रा सोरठा

संपादक
नारायणसिंह भाटी

•

प्रकाशक
राजस्थानी शोध-संस्थान
चौपासनी, जोधपुर

हमारे प्रकाशन :

· लोकगीत ३)
राजस्थानी लोकगीतों का
पहली बार किया गया
समाज-शास्त्रीय अध्ययन

· गोरा हटजा ३)
अंग्रेजी साम्राज्य-विरोधी
१९वीं शताब्दी की
राजस्थानी कविताएँ व
विवेचन

· डिंगल कोष १२)
डिंगल भाषा के प्राचीन
ोबद्ध कोषों का
( [सजिल्द]

मपादक
नारायणसिंह भाटी

राजस्थानी शोध-संस्थान
चौपासनी, जोधपुर

जेठवे रा सोरठा

# जेठवे रा सोरठा

सम्पादक :

नारायणसिंह भाटी,

एम. ए., एल-एल बी

अध्यक्ष, राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी,

जोधपुर.

•

प्रकाशक

राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी,

जोधपुर.

१९५८

प्रकाशक
राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी
जोधपुर

---

परम्परा — भाग ५

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक
हरिप्रसाद पारीक
साधना प्रेस, जोधपुर ।

## विषय - सूची

सब तरह का सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक सुधार भूतकाल के साथ एकदम तिनका तोड कर नही हो सकता। सुधार कम से कम विरोध के मार्ग मे होना चाहिये, जिसका मेल राष्ट्रीय परम्परा और लोगो के स्वभाव के साथ हो, जिसकी साक्षी इतिहास मे पाई जाती हो, अन्यथा वह सुधार कभी धरती के साथ बद्धमूल न होगा और आकाश-बेल की तरह हवा मे झूलता रहेगा।

—राधाकुमुद मुखर्जी
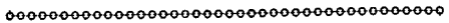
# इतिहास और काव्य

अति प्राचीन काल मे जब समाज की आवश्यकनाएँ और उसके कार्यकलाप बहुत सीमित थे, मानव के रागात्मक सम्बन्धो एवं मान्यताओ की अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम पद्य ही था। समाज की उस अविकसित अवस्था मे छापेखाने व गद्य के अभाव के कारण सामाजिक प्रतिक्रियाओ और मान्यताओं की सहज अभिव्यक्ति को जनता तक पहुँचाने, तथा उससे सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करने के लिए लयात्मक छन्दोबद्ध भाषा ही उपयुक्त थी, क्योंकि मानव-स्मृति के साथ उसका विशिष्ट लगाव रहता है। ऐसी स्थिति मे ऐतिहासिक सामग्री को भी पद्य मे ही स्थान मिलना स्वाभाविक था। जब से बडे साम्राज्यों की स्थापना हुई, शासक वर्ग के चरित्रों और उनके आपसी सघर्षो को काव्य मे प्रमुख रूप से स्थान मिलने लगा। काव्य के माध्यम से उनको विरुदावलियाँ गाने वाली एक जाति-विशेष (Bards) समाज मे मान्य हुई और उसने बहुत बडी तादाद मे वीर काव्यों की रचना की। इसलिए प्रत्येक जाति के साहित्य-इतिहास मे वीर काव्य का स्थान अवश्य रहा है।

इतिहास को आधार मान कर लिखे गये शास्त्र-सम्मत काव्यों को दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है—एक तो वे काव्य जो कवियों द्वारा अपने आश्रय-दाताओं या आश्रयदाताओं के पूर्वजो की प्रशस्ति के रूप मे लिखे गये हैं। ऐसे काव्यो मे ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरंजनापूर्ण वर्णन की ही प्रधानता है

ग्रौर वही उन कवियो का लक्ष्य भी था। वीरगाथा-कालीन महाकाव्यो, खंड-काव्यो ग्रौर वीर गीतो को देखने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। इन काव्यो मे शास्त्रीय परिपाटी के निर्वाह के लिए, विभिन्न छन्दो मे प्रकृति, सैन्य-संचालन, युद्ध, शौर्य, सौन्दर्य, विरह-मिलन ग्रादि का वर्णन अवश्य मिलता है पर वह उतना मौलिक एवं अनुभूतिजन्य नही जितना रूढिबद्ध ग्रौर साहित्य परिपाटी के निर्वाह के लिए है। राजस्थानी एव हिन्दी साहित्य मे इस प्रकार के कितने ही ग्रन्थ रासो, रूपक, प्रकाश और विलास के नाम मे मिलते है जिनको देखने से इस बात को पुष्टि होती है। हाँ इनमे कुछ काव्य ऐसे ग्रवश्य है जिनमे स्थान-स्थान पर कुछ प्रतिभा वाले कवियो ने उक्ति-चमत्कार के द्वारा या ग्रपने वर्णन-कौशल की विविधता के माध्यम से उन रचनाओं को ग्राकर्षक बनाने का प्रयत्न भी किया है। इन काव्यो का स्थान साहित्य के इतिहास एव भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अवश्य महत्वपूर्ण है पर विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से नही।

दूसरे ऐसे काव्य मिलते है जिनमे इतिहास का ग्राधार केवल एक बहाना है। कथा या सूत्र ऐतिहासिक होते हुए भी इतना सूक्ष्म है कि वह ग्रादि से ग्रन्त तक काव्य-श्रोत की तह मे ही खोया रहता है। कवि की कल्पना, रसोद्रेग ग्रौर मौलिक सूझ-बूझ से आवृत ऐतिहासिक तत्व उनमे सदैव गौण रहता है। ऐसे काव्य पहली कोटि के काव्यो से सख्या मे बहुत थोड़े है, क्योकि उनकी रचना ग्रत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न कवियो की लेखनी से ही सभव होती है। मेघदूत, रामचरित मानस, वेलिक्रिसन रुवमणी री, कामायनी ग्रादि काव्य इसी श्रेणी के है।

यह तो हुई शास्त्र-सम्मत काव्यो की बात। इनके अतिरिक्त जन-साहित्य मे एक काव्यधारा निरंतर प्रवलित रही जिसमे ऐतिहासिक तत्व प्रचुर मात्रा मे स्थान पाता रहा है। इनमे वीर-गाथाएँ भी है ग्रौर प्रेम-गाथाएँ भी। समाज मे घटने वाली सहस्रों घटनाग्रो के बीच कभी-कभी ऐसी घटनाएँ भी घटती है जिनमे किसी आदर्शपूर्ण शाश्वत सत्य का रहस्योद्घाटन होता है, और उसे समाज ग्रपने हृदय मे सँजो कर रखना चाहता है। ऐसे तथ्य सहज ही जन-मानस मे उद्वेलित होकर काव्य के रूप मे फूट पडते हैं और पीढी-दर-पीढी मौखिक परम्परा के ग्राधार से वे समय की दूरी को तय करते रहते है। उनमे निहित शाश्वत सत्य की सहज ग्रभिव्यक्ति सगीत का अथक संबल पाकर कितनी ही सामाजिक क्रांतियो के बीच से भी अपनी ताजगी ग्रौर प्रभावोत्पादकता को बनाए रखती है। मानव-परम्परा के साथ उसका कही भी विलगाव होना सहज नही।

इनमे प्रेमगाथाओं की संख्या भी बड़ी है। प्रत्येक प्रेमगाथा के पीछे कोई न कोई ऐतिहासिक घटना अवश्य है और किसी न किसी रूप में उस घटना पर आधारित कथा भी थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ जनता में अवश्य प्रचलित रहती है पर जब काव्य मे उन घटनाओं के ऐतिहासिक तथ्य की ओर केवल संकेत मात्र मिलता है, कभी-कभी तो उतना भी नहीं मिलता, केवल ध्यानपूर्वक देखने पर प्रचलित घटना का आभास मात्र होता है। कहने का तात्पर्य यह कि इस प्रकार के जन-काव्यों में ऐतिहासिक तथ्य अत्यन्त गौण होता है और प्रमुखता होती है उस तथ्य मे व्यंजित सत्य की जिसको जनता के हृदय ने जाने-अनजाने ग्रहण कर लिया है।

ज्यों-ज्यों इन प्रेमगाथाओं का प्रचलन अधिक होता है और जनमानस मे वे अधिक घुल-मिल जाती हैं तो जनता के औसत भावों के साथ वे इस अविच्छेद्य रूप से जुड़ जाती है कि कथा के नायक और नायिका प्रेमी और प्रेमिका के प्रतीकों का रूप धारण कर लेते हैं और प्रेमी-प्रेमिका को लहला-मजनूं के नाम से पुकारा जाने लगता है। यह प्रतीकात्मकता यही पर समाप्त नहीं हो जाती— नायक-नायिकाओं को लेकर रचे गये काव्य मे प्रेमी-प्रेमिका अपने भावों का प्रतिबिम्ब देखने लगते हैं, और कई बार तो उन प्रेमियो का भावोद्वेग प्रचलित काव्य मे अपने अनुभवों की शृंखला भी जोड देता है। ढोला-मारू, रतन-राणा, झेंडर, बाघजी, बीझरा, मूमल, काछबो, निहालदे, जेठवा, नागजी आदि प्रेमगाथाएँ ऐसी ही है जिनमे युगो-युगों से जन-मानस अपनी प्रेम-जन्य अनुभूतियों का प्रतिबिम्ब देखता आया है और भविष्य मे भी इनकी यह विशिष्टता बनी रहेगी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि शास्त्र-सम्मत साहित्य की रचनाएँ चाहे जितनी साहित्यिक और महत्वपूर्ण क्यों न हों, जन-मानस मे जितनी ये लोक-गाथाएँ घुल-मिल सकी हैं उतनी साहित्यिक रचनाएँ नहीं। यहाँ दी गई ऊजळी की प्रेमगाथा का 'शकुन्तला' के साथ कई बातो मे साम्य है और शकुन्तला पर कालिदास जैसे महाकवि ने कलम उठाई है, फिर भी राजस्थान के जन-मानस मे ऊजळी और जेठवा की गाथा जितनी घुल-मिल सकी है उस रूप मे शकुन्तला की भी नहीं। फिर शकुन्तला की कथा तो सर्वमान्य पौराणिक कथा है पर ऊजळी एक अत्यन्त साधारण स्त्री है। वास्तव मे देखा जाय तो जन-मानस मे जो स्थान आज ऊजळी (और इसी प्रकार की अन्य नायिकाओं) का है वह बड़ी से बड़ी रानी का भी नहीं।

राजस्थान के देहातो मे जहाँ इस प्रकार की प्रेमगाथाएँ खेत मे खड़ा किसान, पाणत करने वाला पाणतिया, साँझ के समय खेत से लौटने वाली स्त्रियाँ, भेडे चराने वाला गडरिया और रात की निस्तब्धता मे रास्ता तय करने वाला बटाऊ (राहगीर) अपनी-अपनी मस्ती मे गाकर श्रम की थकान को भुलाते है, वहाँ दूसरी ओर राजस्थान के हर वर्ग मे शादी-विवाह या प्रीति-भोजो के अवसर पर इनकी गीतात्मकता श्रोताओं को एक प्रेमपूर्ण मधुर कल्पना-लोक मे पहुँचा देती है। कहने का मतलब यह है कि क्या श्रम मे और क्या फुरसत मे, इन प्रेमगाथाओ का रस मानव-हृदय पूर्ण उल्लास और भावुकता के साथ लेता है, शताब्दियो से लेता आया है। महलो मे विशेष साज-सज्जा के साथ इनका आनन्द लिया जाता है तो झोपड़ियो मे निर्विकार मस्ती इनके सम पर झूम उठती है। इनसे कोई वर्ग अछूता नही, क्योकि हृदय सब मे है और हर हृदय मे प्रेम की भावना चिरकाल से व्याप्त है। यह सबकुछ होने पर भी इन प्रेम-गाथाओ के पीछे ऐतिहासिक तथ्य क्या है, इससे बहुत थोड़े लोग वाकिफ हैं—वाकिफ होने की उन्होने कभी ऐसी आवश्यकता भी महसूस नही की; क्योकि दरअसल इनमे निहित ऐतिहासिक सत्य उतना महत्वपूर्ण नही जितना कि उन गीतो के माध्यम से व्यजित होने वाले प्रेम-सम्बन्ध है। पर इतना अवश्य मानना पडेगा कि इनके पीछे प्रचलित कथाओ को जान लेने से कथा के नायक-नायिकाओ की चारित्रिक रेखाएँ कल्पना मे अपनी खूबी के साथ उभर आती है जिससे उनके साथ श्रोता का विशिष्ट रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है और प्रेमगाथा के प्रभाव के लिए एक निश्चित भूमिका बन जाती है। पर यह विचारणीय है कि इस प्रकार की प्रेमगाथाओ के पीछे प्रचलित कथाओं मे ऐतिहासिक सत्य कितना है? प्रत्येक प्रेमगाथा के कथा-तत्व मे कुछ बातें ऐसी होती है जो दरअसल मे घटित हुई है, पर समय के दौरान मे उस ऐतिहासिक सत्य के चारो ओर काल्पनिक आवरण बढता जाता है और इस प्रवृत्ति ने गाथाओ मे निरन्तर प्रक्षिप्त अंशों की वृद्धि भी की है, जिससे मूल गाथा कहाँ से कहाँ पहुँच गई है। इन गाथाओ के अधिकाश नायक एव नायिकाएँ ऐसी हैं जिनका जिक्र इतिहास मे भी कही नही मिलता। ऐसी स्थिति मे वास्तविक तथ्य और कल्पना को अलग करने के लिए कोई प्रामाणिक आधार ढूँढना भी व्यर्थ है। सच पूछा जाय तो प्रचलित कथाओं का कल्पना वाला अश भी मस्तिष्क मे इतना असर कर गया है कि वह आज सत्य ज्ञान होने लगा है। उसे उसी रूप मे स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नही। और साधारण जनता तो उसे पूर्ण ऐतिहासिक सत्य के रूप मे

ही ग्रहण करती आई है। क्योंकि उसे इन प्रेम-गाथाओं के निर्माण की प्रक्रिया का पूरा ज्ञान नहीं।

इस तरह की गाथाओं में कौनसा अंश प्रक्षिप्त है यह मालूम करना भी अत्यन्त कठिन है। शास्त्रसम्मत काव्यों की प्रामाणिकता निश्चित करते समय इतिहास से बहुत सी सहायता मिल जाती है, पर जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन गाथाओं की पृष्ठ-भूमि में तो ऐतिहासिक कथाएँ भी कई रूपों में प्रचलित रहती हैं और उनके इन भिन्न रूपों को युगों से मान्यता मिलती आई है। जेठवा-ऊजळी की कथा को ही ले लीजिए,—इसके सम्बन्ध में छोटी-बड़ी घटनाओं को लेकर कई मतभेद प्रचलित हैं। यहाँ तक कि कई लोग ऊजळी और जेठवा का दुबारा मिलन होना ही नहीं मानते, जहाँ दूसरी ओर दोनों के कई बार मिलने की बात भी प्रचलित है और अंत में जेठवा के महल तक जाकर ऊजळी उसे शाप देती है, ऐसा भी अधिकांश लोग मानते हैं। कहने का मतलब यह कि प्रचलित जन-श्रुतियों के आधार पर काव्य की प्रामाणिकता पर निश्चित विचार प्रकट नहीं कर सकते। गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यह भी आवश्यक नहीं जान पड़ता की ऊजळी ने जेठवा के विरह में कुछ सोरठे कहे ही होंगे। यहाँ तक कि पहलेपहल जिस कवि ने कथा से अनुभूति ग्रहण की है उसने भी शायद ७-८ सोरठे ही कहे हों और कालान्तर में भावुक जन-कवियों ने उनकी संख्या में मौका पाकर वृद्धि कर दी हो। पर इतना तो निश्चित है कि जो सोरठे अनुभूति की गहराई से उद्भूत हुए हैं वे ही समय की दूरी को लांघ कर सके हैं और आज हम तक पहुँच पाये हैं। शिथिल अभिव्यक्ति वाला काव्य कभी जनता के कंठों में जीवित नहीं रह सकता।

यह सबकुछ होते हुए भी मुक्तकों से निर्मित प्रेम-गाथाओं में कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। नागजी, बाघजी, बीजरा, सोरठ, ऊजळी आदि की प्रेम-गाथाएँ दोहों-सोरठों में निर्मित हुई हैं। प्रत्येक छन्द में प्रेमी या प्रेमिका का प्रायः नाम मिलता है। जेठवा के सोरठों में तो प्रत्येक सोरठे के अन्त में जेठवा (या मेहउल) शब्द आया है। अतः जेठवा के नाम से प्रचलित सोरठों को सहज ही में इस प्रेम-गाथा के साथ जोड़ा जा सकता है, पर यहाँ कुछ सतर्कता अवश्य अपेक्षित है। उक्त कथा के नायक का पूरा नाम मेह-जेठवा है। अन्य किसी जेठवे के नाम का प्रचलित सोरठा एकाएक इस कथा के साथ नहीं जोड़ लेना चाहिए। जैसे एक सोरठा हालामण जेठवा के नाम से भी प्रचलित है जिसको प्रायः लोग जेठवा के सोरठों के साथ मिला लेते हैं—

गांधी थारी हाट, दोय वसन है वीसरी,
एक गळे रो हार, दूजो हालामण जेठवो।

यह हालामण जेठवा, जेठवा राजाओं की पीढ़ियों में कोई अन्य राजा हुआ है जिसका प्रेम सोन नाम की लड़की के साथ बताया जाता है।

सम्पादित सोरठों में से कई एक सोरठों के अंत में जेठवा के लिए मेहउत शब्द आया है। यह शब्द यहाँ मेह के वंशज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किसी प्रसिद्ध पूर्वज के नाम के आगे उत, सुत या सुतन शब्द लगा कर, 'वंशज' अर्थ की अभिव्यक्ति देना राजस्थानी शैली की विशेषता रही है। 'मेह' नाम के एक और राजा जेठवों की पीढ़ियों में कथा के नायक मेह से भी पहले हो चुके हैं,* इसीलिए यहाँ मेहउत शब्द सार्थक जान पड़ता है। इस प्रकार की कुछ शैली-गत विशेषताओं को समझ कर ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर विचार कर लेना आवश्यक है।

अब देखना यह है कि इस प्रकार की प्रेम-गाथाओं पर शोध कार्य करते समय किन बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है और उनकी उपादेयता क्या है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इनमें ऐतिहासिक तथ्यों की खोजबीन करने के लिए बहुत बेचैन होना या तरह-तरह की अटकलबाजियाँ लगाना कोई विशेष लाभदायी नहीं। प्रायः देखा जाता है कि ऐसी शोध करते समय सन-संवत और तिथि-तारीख में ही मामला इतना उलझा दिया जाता है कि रचना के वास्तविक मर्म को या उसकी सामाजिक उपादेयता को उतना महत्त्व नहीं मिल पाता, जैसा कि नागा के बारे में हुआ। फिर आज तो इतिहास को देखने का दृष्टिकोण ही बदल गया है। केवल शासकों की वंशावली और युद्ध-विग्रह का ब्योरा देने वाली पुस्तकों को इतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसके अतिरिक्त समाज में बहुत कुछ घटित हुआ है और सच्चे माने में वही इतिहास की मूल सामग्री है। ऐसी स्थिति में इन गाथाओं की पृष्ठ-भूमि में रहने वाली सामाजिक परिस्थितियों और तत्कालीन मान्यताओं को जानने की ओर प्रयत्न होना चाहिए। इनके द्वारा जिन शाश्वत सत्य की ओर संकेत किया गया है उनकी मूर्धा को किस तरह उद्घाटन कराना भार इस सम्बन्ध में विचार होना चाहिए और इनके निर्माण की विशिष्ट परम्परा या कवियों के साथ समझा और समझाया जाना चाहिए

तभी इस प्रकार की गाथाओं के शोध व अध्ययन पर किया जाने वाला श्रम सच्चे माने में सार्थक होगा।

प्रस्तुत प्रेमगाथा राजस्थान में शताब्दियों से प्रचलित है। जेठवा के सोरठे हर काव्य-रसिक की जबान पर रहे हैं और आज भी हैं, पर एक साथ आठ-दस सोरठों से अधिक सोरठे बहुत कम व्यक्तियों को याद है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में भी इन सोरठों का संकलन हमारे देखने में नहीं आया इसलिए कितने ही लोगों से सुन-सुन कर ही इन सोरठों का संकलन किया गया। कई लोगों ने किसी सोरठे को थोड़े शाब्दिक हेर-फेर के साथ सुनाया जिसका प्रयोग पाठान्तर के रूप में किया गया है। गुजराती साहित्य में इस दिशा में काफी कार्य हुआ है। स्व० झवेरचन्द मेघाणी द्वारा संकलित सोरठे उनकी टिप्पणी सहित हमने परिशिष्ट में दे दिये हैं। इस प्रेमगाथा का प्रादुर्भाव लगभग १५वीं शताब्दी में माना गया है, जहाँ से राजस्थानी और गुजराती का विभक्त होना प्रारम्भ होता है। यद्यपि समय के साथ भाषा में बहुत परिवर्तन हो गया है, प्रक्षिप्त अंश भी बहुत जुड़ गये हैं, फिर भी रूप और तत्व की दृष्टि से दोनों गाथाओं (गुजराती व राजस्थानी) के सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। अन्त में कुछ लेख देकर इस गाथा के मूल्याकन का भी प्रयास किया गया है पर उसे पूर्ण कदापि नहीं कहा जा सकता। वैसे यह पूरा प्रयत्न ही इस क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए दिशा-निर्देश मात्र है।

इन सोरठों के सङ्कलन में वाडाणी ठाकुर श्री भैरूसिंहजी ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इसके अतिरिक्त नाहटाजी तथा लाळसजी से भी कुछ सोरठे प्राप्त हुए हैं। कन्हैयालालजी सहल से गुजराती सोरठों के सम्बन्ध में परामर्श मिला है जिसके लिए मैं इन विद्वानों का हृदय से आभार प्रदर्शन करता हूँ।

—नारायणसिंह भाटी

## जेठवा - ऊजली की प्रचलित कथा

एक दिन वर्षा की साँझ मे धूमली नगर का राजकुमार मेह जेठवा अपने मित्रों सहित आखेट के लिए निकला।[1] शिकार का पीछा करते-करते वे लोग बहुत दूर निकल गये। सहसा आँधी और वर्षा ने उन्हे आ घेरा जिससे जेठवा अपने साथियो से बिछुड गया। मूसलाधार वर्षा मे कोई उपाय न देख कर जेठवा घोड़े की पीठ पर ही भीगता रहा। बहुत देर भीगने से अत मे सर्दी के मारे ठिठुर कर बेहोश हो गया। जब वर्षा का जोर कुछ मन्द पडने लगा तो घोडा अपनी समझ से घुड़सवार सहित एक झोपडी के सामने खडा होकर हिनहिनाने लगा। यह झोपडी अमरा चारण की थी। पशु-चारण जिसकी जीविका का साधन था। घर मे एक युवती कन्या थी। घोडे की हिनहिनाहट सुन कर अमरा ने ऊजळी से पता लगाने को कहा कि इतनी रात गये, ऐसी वर्षा मे भला यह किसका घोड़ा हिनहिना रहा है। ऊजळी बाहर आई, अधेरे मे उसने घोड़े के समीप आकर देखा तो एक आदमी घोड़े पर बेहोशी मे चिपटा हुआ है। उसने उसे जैसे-तैसे भी नीचे उतारा और झोपडी के अन्दर ले आई।[2] दोनो

[1] कई लोग जेठवा के साथ मित्रों के नही होने का जिक्र करते है।

[2] ऐसा भी कहा जाता है कि घोडे की हिनहिनाहट सुन कर अमरा ने आवाज दी कि जो कोई व्यक्ति बाहर हो अन्दर आ जाये, पर बहुत देर तक जब कोई व्यक्ति अन्दर नहीं आया और घोडा हिनहिनाता रहा तो वह स्वय बाहर आया और शीत से बेहोश घुड़सवार को झोंपडी मे ले आया।

व्यक्ति उसे वेहोशी मे देख कर चिन्ता मे पड़ गये। उसके पहनाव और रूप-रग को देखने से अनुमान लगा कि यह कोई आपत्तिग्रस्त मनुष्य अच्छे घराने का व्यक्ति है। जैसे भी हो द्वार पर आए हुए व्यक्ति की मृत्यु नही होनी चाहिए। शीत के कारण बेहोश हुए व्यक्ति को होश मे लाने की बहुत कोशिशे की गई पर सब विफल गई। अन्त मे अन्य कोई उपाय न देख कर ऊजळी ने उसके साथ एक शय्या पर शयन किया और अपने शरीर की गर्मी से उसे चेतना प्रदान की।[3] प्रभात होते-होते तो जेठवा को पूरा होश आया। दोनो के हृदयो मे एक अजीब उथल-पुथल मची हुई थी। जेठवा ने अपना परिचय दिया। जीवन-दान देने वाली उस युवती का इतना बडा अहसान वह कैसे चुकाए? ऊजळी अपना हृदय भी तो उसे ही समर्पित कर चुकी थी। जेठवा ने ऊजळी के साथ विवाह करने का वचन दिया।[४] दोनो का आकस्मिक विपदाभरा मिलन प्रेम मे परणित हो गया। जेठवा अपने घोडे पर सवार होकर राजधानी को चल दिया। ऊजळी जाते हुए घुडसवार को आतुर नैनों से देखती रही। फिर तो जेठवा कई बार पहाड की तलहटी मे ऊजळी से मिलने आता। दिनों-दिन उनका प्रेम-सम्बन्ध घनिष्ट होता गया, पर एकाएक जेठवा ने ऊजळी मे मिलना बन्द कर दिया।

ऊजळी इन्तजार करती रही। एक पल दिन के समान, दिन पख के समान और पख वर्ष के समान व्यतीत होने लगे और बेचैनी बढती गई। उधर राजघराने के व्यक्तियो को जेठवा के नित्यप्रति के आने-जाने से शक होने लगा था। जेठवा के मस्तिष्क मे एक उलझन घर कर गई थी—एक क्षत्रिय का चारण-कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध कैसे हो सकेगा? उनका रिश्ता तो भाई-बहिन का ही है। यदि अन्य रिश्ता वन जाता है तो दुनिया क्या कहेगी? मै जनता को

---

[3] ऐसा भी प्रचलित है कि अमरा ने जब ऊजळी को इस अपरिचित व्यक्ति के साथ शयन करने को कहा तो उसके मस्तिष्क मे बहुत बडा सघर्ष मच गया। इधर स्त्री की अपनी मान-मर्यादा और इज्जत-आबरू का प्रश्न था और उधर घर के द्वार पर आए हुए व्यक्ति की जिन्दगी को बचाने का सवाल। अमरा ने लडकी को यह कह कर कि ईश्वर अपनी परीक्षा ले रहा है, अपना कर्त्तव्य पूरा करने को कहा। उसे यह भी कहा गया कि अपने भाग्य पर भरोसा रख[1] यदि यह स्व-जातीय व्यक्ति होगा तो उसके साथ तेरा विवाह कर देंगे। तब ऊजळी ने जेठवा के साथ शयन किया।

[४] ऐसा भी कहा जाता है कि जेठवा ने ऊजळी से कहा,—"मैं तुम्हे रथ भेज कर मेरी राजधानी मे बुलवा लूंगा या स्वय बरात लेकर आऊंगा और धूमधाम के साथ तुम से विवाह

आँखों मे अधर्मी हो जाऊँगा । मेरा इहलोक और परलोक दोनों बरबाद हो जाएँगे। ऐसा विचार कर जेठवा अपने महलों मे मौन साध कर बैठ गया ।

पर उजळी तो जेठवा के विरह मे विकल थी । अपने मन की व्यथा को मन मे ही कब तक दबाए रखती । जब इन्तजार की घड़ियाँ असह्य हो गई तो उसे जेठवा के विश्वासघात पर क्रोध भी आने लगा । कई एक आशंकाएँ उसके मस्तिष्क मे घूमने लगी । बूढ़े बाप ने लड़की की करुणाजन्य स्थिति देख कर उसे बहुत समझाया-बुझाया और धैर्य रखने को कहा पर ऊजळी ने एक न मानी और अंत मे वह स्वय जेठवा की राजधानी मे आ पहुँची ।[६] पर जेठवा के महल तक उसे पहुँचने कौन देता । बहुत प्रयत्न करने के बाद जेठवा से उसका साक्षात्कार हुआ ।[७] ऊजळी का हृदय जेठवा को देखते ही हर्षोल्लास से भर गया पर सामाजिक भय के कारण जेठवा अपनी प्रेम-लालसा को दबा कर गम्भीर ही बना रहा । बदली हुई परिस्थिति देख कर ऊजळी तिलमिला उठी । उसने जेठवा के वचन दोहराए और एक कुमारी के साथ विश्वासघात करने वाले राजकुमार को धिक्कारा । ऐसी विकट स्थिति मे अन्य कोई उपाय न देख कर असमजस मे पड़े हुए राजकुमार ऊजळी को मनचाही धन-दौलत और जागीर माँग लेने को कहा । पर प्रेम का सौदा नही होता और न मुआवजा ही । ऊजळी ने एक न सुनी । जेठवा ने फिर समझाया कि एक क्षत्रिय का चारण कन्या के साथ विवाह होना अधर्म है । यदि विवाह होगा तो समाज मे हाहाकार मच जायगा ।

---

[५] ऐसा भी सुना जाता है कि जनता को जब उनके प्रेम-सम्बन्ध का पता लगा, नगर भर म बड़ी सनसनी फैल गई। जनता ने इस कार्य को अधर्म मान कर बड़ा क्षोभ प्रकट किया जिससे जेठवा घबरा कर मौन हो गया ।

ऐसा भी प्रचलित है कि जेठवा विवाह करने का वचन तो दे गया था पर अपने महलों मे पहुँचते ही आमोद-प्रमोद और ऐश्वर्य-विलास मे इतना खो गया कि ऊजळी को भूल ही गया ।

[६] ऐसा भी प्रचलित है कि ऊजळी राजधानी कभी नही गई, वही विरह-वेदना मे घुलती रही । जेठवा को ऊजळी की इस स्थिति का सन्देश अवश्य लोगो ने दिया पर उसने परवाह नही की ।

[७] यह भी कहा जाता है कि राज-कर्मचारियो ने ऊजळी को यह कह कर खदेड़ दिया कि यह कोई बहुत चालाक लड़की है जो जेठवा को प्रेम-सम्बन्ध मे बाँध कर महारानी बनना चाहती है ।

मे बरबाद हो जाऊँगा। मेरा वंश कलंकित हो जाएगा। पर ऊजळी को तो केवल प्रेम चाहिए था, बार-बार उसने उसी की माँग की और निष्ठुर जेठवा न माना, पाषाण बना रहा।

अन्त मे ऊजळी ने निराशाजन्य विक्षिप्तता के साथ जेठवा को शाप दिया कि तुमने जिस शरीर के स्पर्श से मेरा कौमार्य खंडित किया है उसमे आग लगे और तेरा नगर जल कर भस्म हो जाए।[८] इतना कह कर ऊजळी तो वहाँ से चल दी पर जेठवा के पूरे शरीर में जलन ही जलन पैदा हो गई और उसने तड़प-तड़प कर प्राण त्याग दिये।

ऊजळी को जब जेठवा के प्राणांत का पता चला तो दाह-संस्कार के समय वह स्वयं वहाँ पहुँची और जेठवा के साथ जल कर सती हो गई।[९] •

---

[८] जेठवा को कोढ़ निकलने का शाप देने और कोढ से ही उसकी मृत्यु होने की बात भी प्रचलित है।

यहाँ ऐसा भी कहा जाता है कि ऊजळी ने जेठवा को न कोई शाप दिया था और न वह महल तक ही गई। अकस्मात ही जेठवा की मृत्यु का उसे समाचार लगा और वह स्वयं उसकी देह के साथ सती हो गई।

[९] कई लोग जेठवा के साथ ऊजळी के सती होने की बात भी नही कहते। जेठवा के शरीर मे जब आग लगी तो वह जलन को असह्य समझ कर समुद्र मे कूद पड़ा। ऊजळी को इस घटना का पता लगा तो वह भी विलाप करती हुई समुद्र मे प्रविष्ट हुई। समुद्र उसको रास्ता देता गया और जब वह बहुत आगे पहुँच गई तो स्वतः ही आग लगी और ऊजळी उसमें जल कर भस्म हो गई।

टोळी सू टळतांह, हिरणां मन माठा हुवै,
वाल्हा वीछंतांह, जीणो किण विध जेठवा।

टोळी सू टळतांह, हिरणां मन माठा हुवै,
वाल्हा वीछंतांह, जीणो किण विध जेठवा।

भावार्थ • जब हरिणों तक का जीव भी अपनी टोली से अलग होते समय व्याकुल हो उठता है तो हे जेठवा, अपने प्रियतम से बिछुड़ने पर प्रियतमा का जीना फिर कैसे संभव होगा।

शब्दार्थ — टोळी - टोली; टळतांह - अलग होते समय; हिरणां - हरिनों के; वाल्हा - प्रिय; वीछंतांह - बिछुड़ते समय; जीणो - जीना; किण - किस।

– २ –

जिण दिन जलम[1] लियोह, प्रीत पुराणी कारणै,
वाल्हा भूल गयोह, जोगण करग्यो जेठवा।

भावार्थ • मैंने अपने पूर्व जन्म का प्रेम-सम्बन्ध निबाहने के लिए इस धरती पर जन्म लिया था, पर भाग्य की विडम्बना ! मेरा प्रिय मुझे भुला कर जोगिन बना गया।

शब्दार्थ — जिण - जिस, जलम - जन्म, लियोह - लिया; पुराणी - पुरानी; कारणै - कारण से; वाल्हा - प्रिय, भूल गयोह - भूल गया; करग्यो - कर गया।

– ३ –

पैली कीन्ही प्रीत, भूल गयो वाल्हा सजन,
मन मे म्हारे[2] मीत, जीव बसै थू जेठवा।

भावार्थ • मेरे मन के मीत, हे जेठवा, पहले तो तूने मुझे अपनी प्रीत के अटूट बन्धन मे बांध लिया और फिर सदा के लिए भुला दिया। पर मेरे मन मे तो जीवन-आधार की तरह एकमात्र तू ही बसा हुआ है।

शब्दार्थ — पैली - पहले, कीन्ही - की, भूल गयो - भूल गया, वाल्हा - प्रिय; सजन - प्रियतम, म्हारे - मेरे, जीव - प्राण, बसै - बसता है।

---

[1]जनम, [2]मोटा।

– ४ –

जोवन पूरे जोर, मांणीगर मिळियो नही ,
सारै जग में सोर, (हूं) जोगण होगी[1] जेठवा ।

भावार्थ • यह यौवन अपनी पूर्णता मे आलोड़ित हो रहा है पर इसके उपभोक्ता से अब तक मिलन न हो सका। और, हे जेठवा, अब तो समस्त विश्व भी मुझे प्रेम-जोगिन के रूप मे जानने लगा है।

शब्दार्थ — जोवन - यौवन; पूरे जोर - पूर्णता में उन्मत्त; माणीगर - उपभोग करने वाला; मिळियो - मिला; सारै - समस्त; जग मे - संसार में; होगी - हो गई।

– ५ –

तन धन जोवन जाय, ज्यूंही जमारो जावसी ,
प्रीतम प्रीत लगाय, जोगण करग्यो जेठवा ।

भावार्थ • जिस तरह तन, धन और यौवन का प्रतिक्षण ह्रास होता है उसी तरह मेरा यह जीवन भी एक दिन समाप्त हो जायगा। हे जेठवा, प्रेम का अटूट नाता जोड कर तू मुझे सदा के लिए जोगिन बना गया।

शब्दार्थ — जोवन - यौवन, जाय - जाता है; ज्यूंही - जैसे ही; जमारो - जीवन; जावसी - जाएगा; प्रीतम - प्रियतम; लगाय - लगा कर; करग्यो - कर गया।

---

[1] हुयगी

— ६ —

जेठवा पलटूं जूरा, मिनख देह पलटू मुर्दै ,
कहो वरणासी कूरा, जीव रुखाळो जेठवा[1]।

भावार्थ • हे जेठवा अब तो विरह-व्यथा सही नही जाती। जी में आता है कि मानव देह को ही त्याग कर इस योनि से मुक्त हो जाऊँ। पर भला इतना करने पर भी इस तृषित जीव को शान्ति कहाँ—इसका रखवाला कौन होगा ?

शब्दार्थ — पलटू - पलट लू; जूरा - योनि; मिनख देह - मानव देह, मुर्दै - अमल मे, वरणासी - बनाएगा, कूरा - कौन, रुखाळो - रखवाला।

— ७ —

जनमतड़ै जग मांय, मन मौजां मांणी नही ,
नैणां नेह छिपाय, जिऊँ किता दिन जेठवा[2]।

भावार्थ • इस विश्व मे जन्म लेकर भी मैं मनोवाछित आनन्द नही भोग सकी। अब नैनो मे व्याप्त तेरी प्रेम-छबि दुनिया से कब तक छिपाती फिरूँ। इस असह्य दु ख को लेकर कैसे जिन्दा रहूँ ?

शब्दार्थ — जनमतडे - जन्म लेने पर, जग माय - जगत में, मन मौजा - मन की मौज, माणी - भोगी, नैणा - नैनो मे, छिपाय - छिपा कर; जिऊ - जीवित रहूँ, किता दिन - कितने दिन।

[1]कठोरी कारण कूण, जोगण करग्यो जेठवा।
[2]जीऊँ किण विध जेठवा।

— ८ —

जातो जग संसार, दीसै सारां नै दरस ,
भव भव रो भरतार, जिको न दीसै जेठवो ।

भावार्थ ● इस चलायमान संसार में सब तरह के लोग गतिशील दिखाई पड़ते हैं, पर मेरे जन्म-जन्म का प्रियतम जेठवा कहीं भी तो दिखाई नहीं देता ।

शब्दार्थ — जातो - जाता हुआ; जग - जगत्; दीसै - दिखाई देता है; सारा नै - सबको, दरस - दृष्टव्य; भव भव रो - जन्म-जन्म का; भरतार - पति; जिको - जो ।

— ९ —

जळ पीधो जाडेह, पावासर रे पावटे ,
नैनकिये नाडेह, जीव न धापै[1] जेठवा ।

भावार्थ ● एक बार मानसरोवर का स्वच्छ जल तृप्त होकर पी लेने के बाद, हे जेठवा, छोटे तालाब के पानी से भला कैसे तृप्ति मिल सकती है ?

शब्दार्थ — जळ - जल; पीधो - पिया; जाडेह - तृप्त होकर, पावासर - मानसरोवर; पावटै - घाट पर, नैनकिये - छोटे, नाडेह - तालाब; न धापै - तृप्त नहीं होना ।

[1] ढूकै ।

— १० —

पावासर पैठेह[1], हंसां भेळा ना हुआ,
बुगलां ढिग बैठेह[2], जूण गमाई जेठवा।

भावार्थ • मेरे भाग्य की भी क्या विडंबना है जो मानसरोवर मे रह कर भी हसो का सहवास मुझे न मिल सका। केवल बगुलो की संगति मे ही जीवन के ये महगे दिन बीत गये।

शब्दार्थ — पाबासर - मानसरोवर; पैठेह - पैठ कर; हसा - हंसो के; भेळा - शामिल; बुगला - बगुलो के; ढिग - पास; बैठेह - बैठ कर; जूण - जिन्दगी; गमाई - खो दी।

— ११ —

जोडी जग मे दोय[3], चकवे नै सारस तणी,
तीजी मिळी न कोय, जो जो हारी जेठवा[4]।

भावार्थ • इतने बडे ससार मे प्रेम निवाहने वाली केवल चकवे और सारस की दो जोडी ही हैं। तीसरी की खोज करते-करते मैं हार गई, पर हे जेठवा, वह दिखाई नही दी।

शब्दार्थ — दोय - दो, नै - और; तणी - की; तीजी - तीसरी; मिळी - मिली, कोय - कोई, जोती - खोजती।

---

[1]पैसेह,—मे पैठ। [2]बैसेह,—रै ढिग बैठ।
[3]जग में जोडी दोय।
[4]मिळी न तीजी मोय, जोती फिरूं रे जेठवा।

– १२ –

वे दीसै असवार, घुड़लां री घूमर कियां,
अबळा रो आधार, जको न दीसै जेठवो[1]।

भावार्थ • अपने चचल घोड़ों को नचाने वाले वे कितने ही घुड़सवार तो दिखाई पड रहे हैं पर मुझ अबला का जिवनाधार जेठवा उनमे कही दिखाई नही देता।

शब्दार्थ — दीसै - दिखाई पडते हैं, असवार - सवार, घुड़लारी - घोड़ो की, घूमर - घेरे मे नाचना; किया - किये हुए; जको - जो; न दीसै - दिखाई नही पडता।

– १३ –

ताळा सजड जड़ेह, कूची ले कांनै थयो,
ऊघडसी आयेह, जडिया रहसी जेठवा[2]।

भावार्थ • मेरे प्रेम-विह्वल हृदय पर मजबूत ताले जड कर, हे जेठवा, उसकी चाबी लिए किधर चला गया। जब तक लौट नही आओगे तब तक ये यूंही रहेंगे।

शब्दार्थ — ताळा - ताले, सजड जडेह - मजबूती मे जुड कर; कानै - किधर, थयो - चला गया, ऊघडसी - खुलेंगे, आयेह - आने पर, जडिया - जडे हुए; रहसी - रहेंगे।

---

[1]वे आवै असवार, घुडला री घूमर किया,
आतम रो आधार, जको न दीसै जेठवो।
[2]ताळा जडिया जाह, कूची सांई ले गया,
ऊघडसी आयाह, (का) जडिया रहेगि जेठवा।

– १४ –

तो बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी,
विलखतड़ी वीहाय[1], जोगण करग्यो जेठवा।

भावार्थ • तुम्हारे वियोग मे एक घडी का बिताना तक मुश्किल है, फिर भला यह पूरा जीवन कैसे व्यतीत होगा। हे जेठवा, मुझ बिलखती हुई को जोगिन बना कर क्यो छोड गया।

शब्दार्थ — तो बिन - तेरे बिना; जमवारो - जिन्दगी; किम - कैसे; जावसी - जायेगा (व्यतीत होगा); बिलखतड़ी - बिलखती हुई; बीहाय - छोड कर; करग्यो - कर गया।

– १५ –

आवै और अनेक, जां पर मन जावै नही,
दीसै तो विन देख, जागा सूनी जेठवा।

भावार्थ • वैसे और भी अनेक मनुष्य हैं इस दुनिया मे, लेकिन मेरा मन तो किसे भी स्वीकार नहीं करना चाहता। हे जेठवा! केवल तेरे एक के अभाव मे मुझे तो सर्वत्र सूना ही सूना नजर आता है।

शब्दार्थ — आवै - आते हैं; और - दूसरे; जा पर - जिन पर; जावै - जाता; तो विन - तेरे बिना; जागा - जगह।

---

[1] मो बिलखंती नार,—बिलखती बीहाय।

– १६ –

चकवा सारस वांण, नारी नेह तीनू निरख ,
जीणो मुसकल जांण, जोडी विछड़्यां[1] जेठवा ।

भावार्थ • हे जेठवा, चकवा, सारस और नारी इन तीनो की स्वाभाविक प्रेम-विह्वल आदत पर जरा विचार करो ! एक बार इनकी जोडी बिछुड जाने पर फिर इनका जिन्दा रह सकना मुश्किल है ।

भावार्थ — वाण - आदत; जीणो - जीना, मुसकल - मुश्किल; जाण - जानो; विछड्यां - बिछुडने पर ।

– १७ –

इण जग आया आप, किण जग में वासो कियो ,
सो मोय डसगो[2] सांप, जोवन वाळो जेठवा ।

भावार्थ • इस विश्व मे जन्म लेकर तुम मेरे ससर्ग मे तो आये पर न जाने अब कौनसी दुनिया में जा बसे हो, जिससे मेरी देह मे यौवन रूपी सर्प के दशन ने असह्य वेदना सचरित कर दी है ।

शब्दार्थ — इण - इस, आया - आये, किण - किस, वासो - वास, मोय - मुझे, डसगो - डस गया, जोवन - यौवन, वाळो - वाला ।

---

[1]विछड़े; [2]डसियो ।

– १८ –

जाळूं म्हारो जीव, भसमी ले भेळी करूं,
प्यारा लागो पीव, जूण पलटतूं जेठवा[1]।

भावार्थ • मेरे प्रिय हे जेठवा, जी मे आता है कि इस विरह-व्याकुल जीवन को जला कर खाक कर दूँ ताकि इस योनि से मुक्ति पाकर अगले जीवन मे तुम्हे प्राप्त कर सकूँ।

शब्दार्थ — जाळूं - जलादूं; म्हारो - मेरा; भसमी - भस्म; भेळी - शामिल; लागो - लगते हो, पीव - प्रियतम, जूण - योनि।

– १९ –

तमाखू तो पियांह, भूंडी लागै भूख में,
टुकियक अमल लियांह, (कै) जीम्यां पाछै जेठवा।

भावार्थ • जिस प्रकार तम्बाकू का आनन्द भूख मे या अफीम-सेवन के बिना नही आता उसी प्रकार मेरे इस जीवन का आनन्द भी, हे जेठवा, तेरे बिना सभव नही।

शब्दार्थ — तमाखू - तम्बाकू, पियाह - पीने पर, भूंडी - बुरी, लागै - लगती है; टुकियक - थोडासा, अमल - अफीम; लियाह - लेने पर; जीम्या पाछै - भोजन करने पर।

---

[1]प्यारा लागै पीव, जूण पलटचा जेठवा।

– २० –

हियो ज डुळ डुळ जाय[१], वेकर री बेरी ज्यूं[२],
कारी न लागै काय, जीव डिगायां जेठवा ।

भावार्थ • मेरा यह विरहव्यथित हृदय अधीर होकर वालू की बेरी के समान ढह-ढह जाता है पर, हे जेठवा, इस व्याकुल जीव को इतना बेचैन कर के भी कोई समाधान नही मिलता ।

शब्दार्थ — हियो - हृदय; डुळ डुळ जाय - अधीर होकर चलायमान होना; वेकर री बेरी - कच्ची बेरी; कारी - इलाज, लागै - लगती है, काय - कोई; डिगाया - डिगाने से ।

– २१ –

पैले भव रो पाप, सुणजो मो लागौ सही,
सहूं विपत संताप, जीऊं[३] जितरे जेठवा ।

भावार्थ • हे जेठवा, यह मेरे पूर्व जन्म के पापो का ही फल है जिसके कारण मैं इस जीवन मे निरन्तर विपत्ति और दुखो को झेलती रहूँगी ।

शब्दार्थ — पैले भव - पूर्व जन्म; सुणजो - सुनना, मो - मुझे; लागौ - लगा; विपत - विपत्ति, जीऊ - जीवित रहूँ; जितरे - जब तक ।

---

[१]हियो हिन हिन जाय । [२]जिमें । [३]जीवा ।

– २२ –

धोळा वसतर धार, जोगण हो जग मे फिरू[1] ,
हरदम माळा हाथ, जपती रहसू जेठवा ।

भावार्थ ● हे जेठवा, अब तो मेरे लिए केवल एक ही रास्ता रह गया है कि तेरे वियोग मे सफेद वस्त्र धारण किए, जोगिन बन कर, दिन-रात तेरे नाम की माला जपती हुई विश्व भर मे भटकती रहूँ ।

शब्दार्थ — धोळा - सफेद; वसतर - वस्त्र, धार - धारण कर, जोगण - जोगिन; हो - होकर, जग मे - जगत मे, हरदम - हर समय; माळा - माला; रहसू - रहूँगी ।

– २३ –

जग हथळेवो जोड़, परणाया[2] मेलै प्रथम ,
मो माथै रो मौड, जोऊँ किण दिस जेठवा ।

भावार्थ ● विवाह-सस्कार की पूरी रस्म अदा होने के बाद ही लडकी अपने घर मे विदा होती है, पर मुझे वह शुभ घडी नसीब न हुई । मेरे सिर पर भी सुशोभित हो सके उस सेहरे की खोज भला अब कहाँ करूँ ।

शब्दार्थ — हथळेवो - पाणिग्रहण, परणाया - शादी कर के, मेलै - भेजते है, मो - मेरे, मौड - सेहरा, जोऊ - खोजूं, किण दिस - किस दिशा मे ।

[1]जग मे जोगण हो फिरूँ । [2]परणाये ।

– २४ –

आडो समद अथाह, अधविच मे छोडी अठै,
कहोजी[1] कारण काह, जोगण करगो जेठवा।

भावार्थ • इस अथाग जीवन-समुद्र के मझधार मे तुमने मुझे अकेला छोड दिया। हे जेठवा, बताओ तो सही इस तरह मुझे जोगिन बना कर चले जाने का कारण क्या है ?

शब्दार्थ — आडो - सामने, समद - समुद्र; अधविच - मझधार, छोडी - छोडदी; अठै - यहां, काह - कौनसा, करगो - कर गया।

– २५ –

पैली लागत पाप, जे इमडो[2] हूं जाणती,
पैठ गई पछताय, जूण गमाई जेठवा।

भावार्थ • यदि मुझे पहले ही यह मालूम होता कि मेरे इस कार्य का फल पाप मे परिणित हो जाएगा तो मैं यह भूल कभी नही करती, पर अब तो पश्चात्ताप के सिवाय और कुछ नही रहा है। हे जेठवा, मैं तो अपना जीवन ही गवा चुकी।

शब्दार्थ — पैली - पहले; लागत - लगेगा, जे - यदि, इमडो - ऐसा; हूं - मैं, जाणती - जानती, पैठ गई - बैठ गई, पछताय - पश्चाताप करके; जूण - जिन्दगी।

---

[1]कहोनी। [2]असो।

– २६ –

जग दीसै जातांह, वातां श्रे[1] रहसी भळे ,
हित लेगो हातांह, जीवण[2] रो सुख जेठवो ।

भावार्थ • इस नश्वर जगत की सभी वस्तुएँ समाप्त होती हुई दिखाई देती हैं पर मेरे जीवन की यह प्रेमगाथा सदा चलती रहेगी । हे जेठवा, तू मुझ अबला का समस्त जीवन-सुख ही अपने हाथों लूट कर लेगया ।

शब्दार्थ — दीसै - दिखाई पड़ता है; जातांह - जाता हुआ; वातां - बातें; श्रे - ये; रहसी - रहेगी; भळे - फिर भी; लेगो - लेगया; हाथांह - अपने हाथों से ।

– २७ –

हिय रो तजियो हार, तन तजियो तोरे लिये ,
नाजुकड़ी मो नार, जोगण करगौ जेठवा[3] ।

भावार्थ • मैं तुम्हें अपना शरीर तो पहले ही समर्पित कर चुकी थी और अब तेरे वियोग मे शृंगार भी त्याग दिया है । हे निष्ठुर जेठवा, मुझ सुकोमल नारी को तू इस तरह जोगिन बना गया ।

शब्दार्थ — हिय - हृदय, तजियो - तज दिया; तोरे : तेरे; नाजुकड़ी - सुकोमल; करगो - कर गया ।

---

[1]पण । [2]जोवन । [3]जोबन करगै जेठवा ।

– २८ –

देखूं नैणां[1] दोय, चखचूंधी छाई चहूं,
कहो री दीसै कोय, जीवण जोती जेठवा[2]।

भावार्थ • मेरी ये मिलनातुर आँखें चारो ओर राह देखते–देखते चुंधिया गई हैं। अब तो कोई बताए—क्या मेरे प्राणो की ज्योति जेठवा कही आता हुआ दिखाई देता है।

शब्दार्थ — देखूं - देखती हूँ, नैणा - आँखों से; चखचूंधी - चकाचौंध; चहूं - चारो ओर; दीसै - दिखाई देता है; कोय - कोई; जीवण - जीवन; जोती - ज्योति।

– २९ –

नैणां निजर निहार, तीन लोक देख्यो तुरत,
अबळा री आधार, जको न देख्यो जेठवो।

भावार्थ • अपनी अन्तर्दृष्टि से मैंने तीनो लोकों को उत्सुकता के साथ छान मारा पर मुझ अबला का जीवनाधार जेठवा कहीं भी तो दिखाई नहीं दिया।

शब्दार्थ — नैणा - आँखो से, निजर - दृष्टि, निहार - देख कर, तीन लोक - तीनों लोक; देख्यो - देखे, तुरत - तुरन्त, जको - वह।

---

[1]नयणां। [2]जगनी निरखो जेठवो।

– ३० –

मन ही मन रे मांय, केवां री सुणसी कवण ,
हिवड़ो हिन हिल जाय, जिऊँ जिता दिन जेठवा[1] ।

भावार्थ • मेरी अन्तर्वेदना मन ही मन मे घुट रही है। किससे कहूँ, कोई सुनने वाला भी तो दिखाई नही देता। जब तक यह जीवन-क्रम चलेगा, मेरा व्यथित हृदय इस आन्तरिक पीडा मे उद्विग्न रहेगा।

शब्दार्थ — माय - मे; केवा - कहे; सुणसी - सुनेगा; कवण - कौन; हिवडो - हृदय; जिता - जितने ।

– ३१ –

सारस मरता जोय[2], सारसणी मरसी सही ,
लाखीणी आ लोय, जग मे रहसी जेठवा ।

भावार्थ • सारस को मरता हुआ देख कर सारसनी भी निश्चय ही प्राण त्याग देगी। पर उनकी अमूल्य प्रेम-ज्योति सदा दुनिया मे आदर्श बन कर जगमगायेगी।

शब्दार्थ — जोय - देख कर, मरसी - मरेगी; सही - निश्चय ही; लाखीणी - कीमती; लोय - ज्योति, रहसी - रहेगी।

---

[1] जीऊँ जितरै जेठवा। [2] गोय।

– ३२ –

जेठवा हंसो जाय, सपने ही साथे हुवै,
जग में प्रीत जताय, जूरा पलट सूं[1] जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, सपने मे भी मेरी आत्मा का तुमसे ही साक्षात्कार होता है; फिर क्यो न दुनिया के सामने प्रेम का आदर्श रख कर इस जीवन से मुक्ति पालूं, जिससे दोनो आत्माओ का चिर मिलन सम्भव हो सके।

शब्दार्थ — हंसो - प्राण (आत्मा); जाय - जाकर; सपने ही - स्वप्न मे भी; साथे - साथ; हुवै - होता है; जताय - जतला कर; जूण - जीवन; पलट सू - पलटूंगी।

– ३३ –

इहि जोडा उणिहार[2], जननी[3] फिर जाया नहीं,
निकमो नाजुक नार, झुरती रैंगी जेठवा।

भावार्थ • इतने बडे विश्व मे जेठवे के स्वरूप वाला व्यक्ति केवल जेठवा ही है, किसी माँ ने फिर ऐसे पुत्र को जन्म नही दिया। मैं अभागी उसी के पीछे बिलखती रह गई।

शब्दार्थ — इहि - इस, जोडा - जोड; उणिहार - शक्ल; जाया - जन्म दिया; निकमी - निकम्मी; झुरती - बिलखती; रैंगी - रह गई।

---

[1]पलटलू। [2]इण जोडे उणियार। [3]जरणी।

– ३४ –

चकवा चाकर चोर, रैण विछोवा राखिया,
अब[1] मिळ जावै और, (तो) जतनां राखूं जेठवा।

भावार्थ • चकवा, चाकर और चोर तो अपनी प्रेमिकाओं से केवल रात भर के लिए ही बिछुड़ते हैं पर तू तो ऐसा बिछुड़ा कि फिर मिला ही नहीं। हे जेठवा, अब फिर से यदि तेरा मिलन हो जाय तो मैं बड़े यत्न के साथ तुझे सम्भाल कर रखूंगी।

शब्दार्थ — रैण - रात्रि; विछोवा - वियोग; राखिया - रखा; जतना - यत्न से; राखू - रखूंगी।

– ३५ –

जेठवा जुग च्यार[2], सजनां थू साथे रह्यो,
विरही देख विचार, जोगण करग्यो जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, चार युगों तक मेरे साथ तेरा अटूट प्रेम-सम्बन्ध रहा है, फिर भला अब मुझे क्यों जोगिन बना गया; जरा इस पर विचार तो कर।

शब्दार्थ — जुग - युग, सजना - प्रियतम, साथे - साथ; रह्यो - रहा; विचार - विचार, करग्यो - कर गया।

---

[1] जे। [2] जुग-जुग रा भरतार।

– ३६ –

धरती अंबर धार, जळ थळ मे रेवै जठै,
अबळा रो आधार[1], जोती फिरूं म्हैं जेठवो।

भावार्थ • जल-थल और धरती-आकाश के बीच जहाँ कही भी मुझ अबला का जीवनाधार जेठवा रहता है, मैं उसकी खोज मे अत्यन्त व्याकुल होकर भटक रही हूँ।

शब्दार्थ — जळ थळ - जल-थल; रेवै - रहता है; अबळा - अबला; जोती - खोजती; म्हैं - मैं।

– ३७ –

आंख्यां उणियारोह, निपट नही न्यारो हुवै,
प्रीतम मो[2] प्यारोह, जोती फिरूं रे जेठवा।

भावार्थ • मेरे प्रिय हे जेठवा ! तेरी सूरत एक क्षण के लिए भी आँखो मे ओझल नहीं होती। तेरी चिर स्मृति को लिए मैं अधीर होकर मिलन-आशा मे भटक रही हूँ।

शब्दार्थ — आख्या - आँखो से, उणियारोह - सूरत, निपट - बिल्कुल; न्यारो - अलग, हुवै - होता है, प्यारोह - प्यारा।

---

[1]अबळा तणो अपार। [2]जुग।

— ३८ —

मोरा मन मांणेह, झड़लोरां आवै जदै,
जिवडो[1] मो जांणेह, जाऊँ किण दिस जेठवा[2]।

भावार्थ • जब गरजते हुए बादल झडी लगा देते हैं और मदमत्त मयूर आत्म-विभोर हो ऊँची आवाज मे बोल उठते हैं तो, हे जेठवा, मेरा यह प्यासा हृदय चलायमान हो उठता है। मैं किस ओर जाऊँ, तेरा कोई पता भी तो नही।

शब्दार्थ — मोरा - मयूर, माणेह - आनन्द लेना; झडलोरा - बादलो की झडी, आवै - आते हैं, जदै - तब।

— ३९ —

पपैया प्याराह, पिव पिव कर बोलै प्रथम,
सह रजनी स्यारांह, जोबन रो मद जेठवा।

भावार्थ • इधर तो पपीहे पिउ-पिउ की रट लगा कर बेचैन करते हैं और उधर रात भर भींगुरो की आवाज हृदय को झङ्कृत करती रहती है। ऐसे कामद वातावरण मे, हे प्रिय जेठवा, मेरा यौवन-मद अलोडित हो उठता है।

शब्दार्थ — पपैया - पपीहे, प्याराह - प्यारे, बोलै - बोलते है; सह - सब; स्याराह - भींगुर, जोबन - यौवन।

[1] हिवडो। [2] जावा किण मग जेठवा।

– ४० –

कोयल वाळी कूक[1], सालै मो उर[2] मे सदा,
हिवडै हालै हूक, जग में मिळै न जेठवो।

भावार्थ • तेरे विरह मे कोयल की कूक हूक बन कर सदा मेरे हृदय मे कसकती रहती है। पर हे जेठवा, तू कही ढूंढने पर भी नहीं मिलता।

शब्दार्थ — वाळी - वाली, सालै - सालती है; मो - मेरे; हिवडै - हृदय मे; हालै - चलती है।

– ४१ –

कागा काय न काय, सूण सु कहे सुहावणा[3],
निगमी मिळसी नाय, जो-जो हारी जेठवा।

भावार्थ • रे कागा! बार-बार बोल कर किसी के आगमन की शुभ सूचना देने का व्यर्थ प्रयत्न क्यो कर रहा है। मेरा प्रिय जेठवा तो अब आने से रहा। उसको खोजते-खोजते मैं हार चुकी पर वह मेरी पहुँच के बाहर है।

शब्दार्थ — सूण - शकुन; सुहावणा - अच्छे, निगमी - पहुँच से बाहर; मिळसी - मिलेगा, नाय - नही।

---

[1]कोयलडी री कूक। [2]मन। [3]सुहामणा।

– ४२ –

नैणां लागो नेह, उर अंतस मांही बसै,
सजनां सांच सनेह[1], जुग मे मिळै न जेठवो।

भावार्थ • जिन आँखो के साथ स्नेह का बन्धन हो गया था, उसका अब हृदय मे स्थायी निवास हो गया है। मेरे प्रिय जेठवे के साथ ऐसा विशुद्ध प्रेम हो जाने के पश्चात भी ससार मे उसका मिलना दूभर हो रहा है।

शब्दार्थ — नैणा - आँखो से; लागो - लगा; नेह - स्नेह; अंतस - अंतर्तम; सनेह - स्नेह।

– ४३ –

धरती रवि ससि धीस, सांच तणी साखां भरै,
जग मांही[2] जगदीस, जितै गिणीजै जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, तुम्हारे साथ मेरे सच्चे प्रेम-सम्बन्ध की साक्षी, धरती, सूर्य, चन्द्रमा और राजा भी तब तक देते रहेगे जब तक विश्व मे ईश्वर की मान्यता रहेगी।

शब्दार्थ — ससि - चन्द्रमा, साखा भरै - गवाही देते रहेगे; माही - मे, जितै - जब तक; गिणीजै - माना जाता है।

---

[1]साचै हियै सनेह। [2]चावो।

– ४४ –

पल जांणै दिन जाय, दिन जांणै पख ज्यू दरस ,
पख एक वरस देखाय, जावण लागा जेठवा[1] ।

भावार्थ • हे जेठवा, अब तो मुझ विरहिनी का जीवन इतना दूभर हो गया है कि मुझे पल दिन के समान, दिन पख के और पख वर्ष के समान व्यतीत होते हुए जान पडते हैं ।

शब्दार्थ — जाणे - मानो; पख - पखवाडा, दरस - लगता है; देखाय - दिखाई देते हैं; जावण - जाने, लागा - लगे ।

– ४५ –

पावासर री पाज, हंसो हेरण हालिया ,
कोई न सरियो काज, जागा सूनी जेठवा ।

भावार्थ • हे जेठवा, मानसरोवर के किनारे मैं हंस को ढूंढने निकली थी पर मेरी मनोकामना पूरी न हुई । जहाँ भी दृष्टि दौडाई केवल सूनापन ही दिखाई दिया ।

शब्दार्थ — पावासर - मानसरोवर, री - की, पाज - पाळ, हेरण - ढूंढने को; सरियो - निकला, काज - कार्य; जागा - जगह ।

---

[1] जावे जुरमी जेठवा ।

– ४६ –

जोबन रो मद जोर, मेहो[1] पण मिळियो नहीं ,
कोरी काजळ ·कोर, ज्यू नैणां विन जेठवा ।

भावार्थ • मेरा यौवन-मद पूर्णता पर है, पर उसका उपभोग करने वाला मेह-जेठवा अब तक न मिला। मेरे इस महंगे यौवन की दशा अब उस कज्जल-रेखा की तरह हो गई है जिसकी शोभा आंखो के अभाव मे सुशोभित न हो सकी।

शब्दार्थ — जोबन - यौवन; मेहो - मेह जेठवा; पण - परन्तु; मिळियो - मिला; काजळ - कज्जल; कोर - रेखा; नैणा - आँखें।

– ४७ –

देखी जूणां दोय, नार पुरख भेळा निपट ,
कहसी बातां कोय, जोग तणी जी जेठवा ।

भावार्थ • नारी और पुरुष दोनो के जीवन का सहवास तो इस दुनियाँ मे सबने देखा है, पर मुझ प्रेम-योगिन की दुखद जीवन-गाथा इस विश्व मे कौन कहेगा ?

शब्दार्थ — नार - नारी; पुरख - पुरुष, भेळा - शामिल; निपट - बिल्कुल; कहसी - कहेगा, कोय - कोई; जोग - योग; तणी - की।

[1] मदवो।

– ४८ –

भसमी अंग भिड़ाय, हांण लाभ देखी हमें,
नैणां नेह छिपाय, जाय वस्यो जी जेठवो[1]।

भावार्थ • अंग-अंग पर भस्म रमा कर, प्रेम-योगिन बन जाने के पश्चात, इस जीवन के हानि-लाभ का लेखा-जोखा मेरी समझ में आया। पर अब क्या हो—मेरे स्नेह को आँखों से ओझल करके जेठवा न जाने कहाँ जा बसा है।

शब्दार्थ — भसमी - भस्म; भिड़ाय - लगा कर; हांण - हानि; हमे - अब; जाय - जाकर; वस्यो - बस गया।

– ४९ –

देखो दो रा दो'र, सदा एक गत सारसा,
आवै कदे न और, जाय जिसा दिन जेठवा।

भावार्थ • सारस और सारसनी के जीवन मे भी सदा एक विशेषता रहती है—जब देखो दोनों एक साथ विचरण करते हैं, पर मैं जीवन के महगे दिन अकेली बिता रही हूँ। हे जेठवा, ये जाने वाले दिन फिर कभी लौट कर नहीं आयेंगे।

शब्दार्थ — गत - गति; सारसा - सारस-सारसनी, आवै - आयेंगे, कदे न - कभी भी, जाय जिसा - जाने वाले।

---

[1] गयो किणी दिस जेठवो।

– ५० –

चढियो नीर अपार[1], पडियो जद पीधो नही,
गूदळिये जळगार, जीव न धापै[2] जेठवा।

भावार्थ ● हे जेठवा, अपार जल-राशि जब सामने थी, तब तो उसका उपभोग किया नही और अब इस गदले पानी से मेरे जीव को तृप्ति नही होती।

शब्दार्थ — चढियो - चढा हुआ; पडियो - पडा था; जद - जब; पीधो - पिया, गूदळिये - गदले, जळगार - पानी; धापै - तृप्त।

– ५१ –

ईंडा अनड तणाह, बिन माळै मेले बुग्रो[3],
उर अर पांख बिनांह[4], जीवै किण विध जेठवा।

भावार्थ ● जिस तरह अनड पक्षी अपने अंडे आकाश ही मे छोड देता है उसी प्रकार मुझे भी तूने अधर ही मे छोड दिया। भला तेरे स्नेह-पूर्ण सान्निध्य के बिना मेरा जीवित रहना कैसे संभव हो सकेगा।

शब्दार्थ — ईंडा - अंडे, अनड - अनलपक्ष जो आकाश ही मे अंडे देता है; बिन माळै - बिना घोंसले, मेले - रख कर, बुग्रो - चला गया।

[1]अथाग। [2]ढूंकै। [3]मूकी गयो। [4]पाल नहीं परवाय।

– ५२ –

ऊँचा ते अळगाह, भुंइ पड़िया भावै नहीं,
थुड़ी पाखळी फिरतांह, जीव गमायो जेठवा[1]।

भावार्थ • जो फल ऊँचे हैं वे हाथ नहीं लगते और जमीन पर पड़े हुओं को खाने की रुचि नहीं होती। इस दुविधा में भटकते-भटकते ही, हे जेठवा, यह जीवन बीत गया।

शब्दार्थ — अळगाह - दूर; भुइ - पृथ्वी; पडिया - पड़े हुए; पाखळी - पानी की कूडी।

– ५३ –

निरखी जोया नग्ग, (जे) मोल मुंहगा जाणती,
उळझ्यो काचो तग्ग, जांण्यां पाछे जेठवा।

भावार्थ • जो महंगा नग मुझे पहली बार हाथ लगा था यदि उसकी कीमत मैं उसी समय पहिचान जाती तो अच्छा होता, पर अब मेरे जीवन का धागा कच्चे सूत की तरह उलझ चुका है।

शब्दार्थ — जे - यदि, मुंहगा - महंगे; जाणती - जानती; उळझ्यो - उलझ गया; काचो - कच्चा, तग्ग - तागा, जाण्यां - जानने पर।

---

[1] गयो जमारो जेठवा।

– ५४ –

पावासर पैंसेह[1], जो कोई हेरयो नही,
बग पासे बैंसेह[2], जनम क्यू जासी जेठवा।

भावार्थ • मानसरोवर मे रह कर भी यदि मैं हस को न ढूंढ पाई तो, हे जेठवा, बगुलो की सगति मे बैंठ कर भला व्यर्थ ही जीवन खोने से क्या होगा।

शब्दार्थ — पावासर - मानसरोवर; पैंसेह - पैंठ कर; हेरयो - ढूंढा; बग - बगुला; पासे - पास; बैंसेह - बैंठ कर; जासी - जायेगा।

– ५५ –

रूनी[3] रने चढेह, जातांही[4] जोयो नही,
वहिला वळण करेह, जुग जीवूं जी जेठवा।

भावार्थ • अरण्य की ऊँची से ऊँची जगह पर चढ कर मैं तेरे विरह मे दहाड मार कर रोई थी पर तूने जाते समय मुड़ कर देखा तक नहीं। हे जेठवा, एक बार लौट कर आजा ! मैं इसी मिलन-आशा मे युगो तक जीवित रहूँगी।

शब्दार्थ — रूनी - रोई, रने - अरण्य, चढेह - चढ कर; जोयो - देखा; वहिला - प्रिय, वळण - लौटना।

---

[1]पैंठेह। [2]बैंठेह। [3]रोई। [4]जावतहे।

– ५६ –

टोळी सू टळियांह, वाला हर हु विछोहियां,
थोरी हाथ थयांह, सो किम जीवै जेठवा[1]।

भावार्थ • अपने साथी मृगों की टोली से बिछुड जाने वाले मृग के दुर्भाग्य की वैसे ही सीमा नही होती, तिस पर वह शिकारी के हाथ आ लगता है तो, हे जेठवा, उसका जीवित रहना भला कैसे सम्भव हो सकता है।

शब्दार्थ — *टळियांह* - अलग होने पर; *वाला* - प्रिय; *विछोहिया* - बिछुड़ने पर; थोरी - जाति विशेष, शिकार जिनका पेशा है; किम - कैसे।

– ५७ –

अंगूठे री आळ[2], लोभी लगाड़े गयो[3],
रूनी सारी रात, जक न पडी रे जेठवा।

भावार्थ • मेरे सुप्त यौवन को, हे लोभी जेठवा, तू अपने स्पर्श से जगा गया; फिर तो तेरे वियोग मे शान्ति कहाँ ? पूरी रात ही मैंने रोने-बिलखने गुजारी।

शब्दार्थ — आळ - छेड़; लगाड़े गयो - लगा गया, रूनी - रोई; जक - शान्ति।

---

[1]जीवै किण विध जेठवा। [2]आग। [3]लोभी तुही लगायगो।

— ५८ —

डहक्यो डंफर देख, वादळ थोथो नीर विन,
हाथ न आई हेक, जळ री बूंद न जेठवा।

भावार्थ • आंधी के साथ चले आने वाले खाली बादल को देख कर मैं उसकी ओर लालायित अवश्य हुई, पर प्यास बुझाने को जल की एक बूंद भी मुझ अभागिन के हाथ न लगी।

शब्दार्थ — डफर - आंधी; वादळ - बादल; विन - बिना; हेक - एक।

— ५९ —

तावड तड़तड़ताह, थळ ऊंची चढतां थकां,
लाधी' लडथड़तांह, जाडी छाया जेठवा।

भावार्थ • चिलचिलाती धूप में, तपे हुए बालू के टीबों की ऊँचाई पर चढ़ते समय मैं अत्यन्त थकित होकर लड़खड़ा रही थी, हे जेठवा, तब कहीं तू घनी शीतल छाया के समान मुझे मिला था।

शब्दार्थ — तावड़ - धूप, थळ - रेगिस्तान, चढ़तां - चढ़ते; लाधी - मिली;
जाडी - घनी।

– ६० –

खारी लागै खेळ, वाळां नै बूढ़ां तणी,
मनां न होवै मेळ, जोड़ी विनां न जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, आयु की समानता के बिना कभी दो मनों का मेल संभव नहीं होता, इसलिए बाल और बुद्धों की केलि मे कोई रस नही होता।

शब्दार्थ — खारी - बुरी; लागै - लगती है; खेळ - केलि; बाळा - कम उम्र वाले, मेळ - मेल।

– ६१ –

जोगी तपै जिकाय, आंगण विच आतो रहै,
तोमे पडी तिकाय, जुड़े न संगिया जेठवा[1]।

भावार्थ • अपनी तपस्या मे तल्लीन रहने वाले जोगी भी कभी-कभी अपने घर की सुध ले लेते हैं पर, हे जेठवा, तू तो कभी भूल कर भी इधर नही आया; तेरे मे अटकी मेरी मिलन-आशा भला फिर कैसे पूरी हो।

शब्दार्थ — तपै - तप करते हैं, जिकाय - जो, आगण - आँगन, जुडे न - मिलती नही।

---

[1]मिळै न संगिया मेरउत।

– ६२ –

चढ़े ज चौरंग बार, आंटे विहु अस्त्री तर्णं,
तिरा तू जांगरा हार, मूढ़ न जाणे मेहउत ।

भावार्थ • इस दुनियाँ मे कई योद्धा अपनी प्रेमिकाओं के बदले घमासान युद्ध तक कर चुके हैं। इन सभी बातों से भली भाँति परिचित होते हुए भी, हे जेठवा, मेरे लिए अज्ञानी ही बना रहा।

शब्दार्थ — चौरग - युद्ध; आटे - बदले; अस्त्री - स्त्री; तिरा - तिसको; जारगण-हार - जानने वाला।

– ६३ –

जंजर जड़िया जांह, आघे जाअे उर महे,
कूची कौरा[1] करांह, जडिये जाते जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, मेरे हृदय की गहनता मे पैठ कर तूने मुझे प्रेम की जंजीरो मे जकड दिया और जाते समय उसकी चाबी न मालूम किन हाथो मे सौंप गया।

शब्दार्थ — जजर - जजीर; आघे - दूर, जाअे - जाकर; महे - मे; कौरा - कौनसे, जाते - जाते समय।

---

[1] कवरा।

– ६४ –

लागो लोचण[1] लाह, अणियाळा अलता तणो,
सरसूं सेर थयाह, जोड़ी तोसूं[2] जेठवा।

भावार्थ • मेरी आँखों मे तेरे प्रेम का तीव्र रग लग जाने पर जो प्रेम-सम्बन्ध उत्पन्न हुआ था, वह अब अत्यन्त घनीभूत होकर बहुत बडा रूप धारण कर चुका है।

शब्दार्थ — लागो - लगा; लोचण - आँख; अणियाळा - तीव्र, अलता - रंग, थयाह - हुआ; तोसू - तेरे से।

– ६५ –

आंबो ऊँची डाळ, भुंइ पड़िया भावै नहीं,
चन्दण माळा हाथ, जपती फिरु रे जेठवा[3]।

भावार्थ • मुझे जिस आम की चाह है वह बहुत ऊँची डाल पर लगा हुआ है और नीचे पडे हुए मेरे मन को रुचते नही। ऐसी स्थिति मे, हे जेठवा, हाथ मे चन्दन की माला लेकर तेरे नाम का जप करती हुई इधर-उधर भटक रही हूँ।

शब्दार्थ — डाळ - डाली; भुइ - पृथ्वी; पडिया - पडे हुए; भावै - अच्छे लगे।

---

[1]लोयण। [2]थासू।
[3]आवो डाळ अकाम, भू पडिया भाया नहीं,
ऊँचे पळ री आम, जनम गमायो जेठवा।

– ६६ –

घण बिन थाट थयाह, अहरण आभड़िया नही ,
सीप समंदां मांहि, मुंहगा[1] मोती मांगिया ।

भावार्थ • जिस तरह घन और अहरन के संयोग बिना लोहे का ढेर व्यर्थ पड़ा रह जाता है वही हाल मेरे जीवन का है । जैसे समुद्र मे सीप का प्रादुर्भाव मोती की आकांक्षा को लेकर होता है उसी तरह मेरी मनोभिलाषा, हे जेठवा, तुझे प्राप्त करने की है ।

शब्दार्थ — घण - घन; थाट - समूह; थयाह - हुआ; अहरण - वह वस्तु जिस पर लोहा पीटा जाता है; आभड़िया - लगा ।

– ६७ –

मनां न होवे मार, लोही जां लेखे चढै ,
सुध वाहिरो[2] ससार, माचो आधा मेहउत ।

भावार्थ • जिनका यौवन ढल चुकता है उनके हृदय मे प्रेम का स्पन्दन नही होता । हे जेठवा, मुझे इस अवस्था मे छोड कर न जाने तुम कहाँ आनन्द लूट रहे होगे । ठीक ही है—मतलब निकल जाने पर सुध विसार देना ही इस ससार का नियम है ।

शब्दार्थ — मार - अत्यधिक प्रभाव; लोही - खून, जा - जिनका; लेखे चढै - काम आ चुकता है, सुध बाहिरो - बिना सुध का; माचो - आनन्दित हो रहे हो, मेहउत - जेठवा ।

---

[1]महिला । [2]हीणो ।

– ६८ –

करणी पजै जकाय, कर सोहै कांमिरा तणे ,
तोमे पड़ी तिकाय, मिळै न संगिया मेहउत ।

भावार्थ • जिस स्त्री की जैसी करनी होती है उसी के अनुसार वह जीवन के सुख-दुख भोगती है, पर मेरी करनी का जो फल तेरे हाथ है वह मुझे प्राप्त नही हो रहा है ।

शब्दार्थ — जकाय - जो; कर सोहै थ लगती है; कामिण - कामिनी; तणे - के;
सगिया - मगी; मेहउत - जेठवा ।

– ६९ –

दरसण हुआ न देव, भेव विहुणा भटकिया ,
सूना मिन्दर सेव, जनम गमायो जेठवा[1] ।

भावार्थ • मैं कई भेष धरके तेरी खोज मे इधर-उधर भटक चुकी पर मेरे देवता के दर्शन नही हुए । अब लगता है कि सूने मन्दिरो की सेवा करके यह अमूल्य जीवन व्यर्थ ही मे खो दिया ।

शब्दार्थ — दरसण-दर्शन, भेव - भेष, विहुणा - तरह-तरह के; भटकिया - भटके;
सूना सूने, मिन्दर - मन्दिर ।

---

[1] जूग गमाई जेठवा ।

— ७० —

घटघल हलियो जाहि, पिंजर पग मांडै नहीं,
काळेजे मे कोइ, म्यांन विहूणी मेहउत।

भावार्थ • अबतो मेरा विरह-व्यथित हृदय हिल-हिल जाता है। दुर्बलता के कारण पिंजर हुई यह देह तो डग भरने मे भी असमर्थ है। मेरे कलेजे की पीडा का कोई अन्त नही। ऐसा लगता है मानो उसमे किसी ने नगी तलवार भोक दी है।

शब्दार्थ — घट - हृदय; हलियो जाहि - हिलता है; म्यान विहूणी - म्यान रहित।

— ७१ —

अदर ऊठी आग, बिछड़ते तो वल्लहा,
मनहज सूधै[1] माग, जुडिये ठरसी जेठवा।

भावार्थ • हे प्रिय जेठवा, तेरे बिछुडने से मेरे हृदय मे जो विरहाग्नि प्रज्वलित हुई है वह मेरे मन के साथ तेरे मन का निश्छल मिलन होने पर ही शात हो सकेगी।

शब्दार्थ — बिछडते - बिछुडते समय, वल्लहा - प्रिय, माग - जगह (रास्ता), जुडिये - मिलन होने पर।

---

[1] पूरे।

– ७२ –

जासूं कहिये जाय. कहिये सै कांनी थया ,
आलूध्या उर मांय, मावै[1] नाही मेहउत ।

भावार्थ • मैं चारो ओर चाहे जिस किसी से मेरी विरह-व्यथा कहती फिरूँ, कोई ध्यान नही देता; पर किया क्या जाय ? मेरे उलझे हुए हृदय मे जेठवे का प्रेम समाता तक नही। वह बार-बार छलक उठता है।

शब्दार्थ — जासू - जिस किसी से; सै कानी - सब तरफ; आलूध्या - उलझे हुए; मावै - समाता ।

– ७३ –

जोतां जग सारोह, औरे दृष्ट न आवियो ,
थयो जेठा थारोह, परवत हिवडो[2] पेट मे ।

भावार्थ • इतनी बड़ी दुनियाँ में तुझे खोजते-खोजते खाक छान मारी पर तू कही भी दिखाई नहीं दिया। अब तो तेरे उस हृदय की स्मृति पेट मे पहाड बन कर समा गई है।

शब्दार्थ — जोता - देखते (खोजते); सारोह - समस्त; दृष्ट - दिखाई; आवियो - आया; जेठा - जेठवा; थारोह - तेरा; परबत - पर्वत, हिवडो - हृदय।

---

[1]मावो । [2]जिवडो ।

— ७४ —

वालम सू विछोड़ि, कांई थे करता कियो,
जोगण हूं जुग कोडि[1], जुड़े नही मो जेठवो।

भावार्थ • हे विधाता, मुझ अबला को अपने प्रियतम से विलग करके तुमने यह क्या किया। मैं युगों-युगों तक जोगिन के भेष मे बिलखती रहूँगी पर मुझे फिर जेठवे का संयोग प्राप्त नही होगा।

शब्दार्थ — बिछोडि - विछोह करके; काई - क्या; जोगण - जोगिन; हूं - मैं; जुग - युग; जुडे नही - मिलता नही।

— ७५ —

रही हुती मन रांचि, मन लाये[2] मूकी गयो,
केथो कीजे काचि, मोती झूडै (जो) मेहउत[3]।

भावार्थ • मैं उसे पाकर हर्षोल्लास मे बेसुध हो गई थी पर वह इतना समीप आकर भी मुझे छोड गया। भला मुझ काच के टुकडे का वह करे भी क्या। वह तो अनगिन मोती बटोर रहा है।

शब्दार्थ — हुती - थी, मन राचि - मनोमुग्ध; मूकी गयो - छोड गया; केथो - किधर, झूडै - बटोरना (किसी झाडी पर लाठी से प्रहार करके बहुत से फल आदि झाडने की क्रिया)।

---

[1]जोगण हूं अणजोग।

[3]जुडे न मोती जेठवो।

– ७६ –

जातां समै न जोइ, जो जातां जोवै नही,
भरि भरि नैण म रोइ, करि काइर काठो हियो।

भावार्थ • पहले तो इतना अपनत्व जताया और फिर जाते समय जिसने जी भर कर मेरी ओर देखा तक नही, भला उसके पीछे आँखें भर-भर कर रोने से क्या लाभ। कायर नारी ! अब तो अपने हृदय को कड़ा कर। और कोई चारा नही।

शब्दार्थ — जाता - जाते; समै - समय; जोवै - देखा; म रोइ - रो मत; काइर - कायर, काठो - मजबूत; हियो - हृदय।

– ७७ –

तिसियां टळवळियांह, आधी राति ओजागियां[1],
लाधो लू आय्यांह, जळ सरीखो जेठवो।

भावार्थ • तपतपाती लुओं-भरे दिन की प्यास से व्याकुल व्यक्ति को आधी रात तक तड़फते रहने के बाद जिस तरह पानी मिला हो उसी तरह, हे जेठवा, तू मुझे मिला था।

शब्दार्थ — तिसिया - प्यास के कारण, ओजागिया - जगने पर; लाधो - मिला।

---

[1] ओजाकिया।

— ७८ —

जेठवा जळ इक जात, जळ मे जात हुवै नही ,
आय वरे री भांत, पांणी पा बरसा[1] तणो ।

भावार्थ • हे जेठवा, जल मे जिस तरह जात-पांत का भेद नही होता ठीक वही स्थिति प्रेम की है। इसलिए सारा भेद त्याग कर तू मुझे अपनी विवाहिता की भांति ही अपना और अपने प्रेम-जल से मुझे तृप्त कर।

शब्दार्थ — इक - एक; हुवै - होनी; आय - आकर; वरे री भात - विवाहित की तरह।

— ७९ —

वहतो जळ छोडेह, पुसली भर पीधो नही ,
नैनकडे नाडेह, जीव न धापै जेठवा।

भावार्थ • अपार जलराशि को प्रवाहित होते देख कर उसमे से तो चुल्लू भर भी पानी पीया नही और अब इन छोटे-छोटे पोखरो के गदे पानी से, हे जेठवा, जी नही भरता।

शब्दार्थ — बहतो - बहता हुआ; छोडेह - छोड कर; पुसली भर - चुल्लू भर; पीधो - पिया; नाडेह - तलाई; धापै - तृप्त।

---

[1] वासर।

— ८० —

जेठे तणी जगीस, मन हूते मेली नही,
वाल्हा मिलण व्हीस, जोड़ो तो संग[1] जेठवा।

भावार्थ • तेरी प्रेममय स्मृति, हे जेठवा, सदैव मुझ में जागृत रहती है। एक क्षण के लिए भी वह मन से दूर नही होती। मेरी जोड़ी तो केवल तुम्हारे ही साथ है, फिर अपना सुखद मिलन कब होगा?

शब्दार्थ — जेठे - जेठवे; तणी - की; मन हूंते - मन से; वाल्हा - प्रिय; मिलण - मिलन; व्हीस - होगा।

— ८१ —

परदेसी री पीर[2], जेठी राण जांणी नही,
तांणी ने मारचा तीर, वायां[3] भरि भरि जेठवा।

भावार्थ • तुमने अपने अनगिनत प्रेम-बाणों (कटाक्षों) से मुझे घायल तो कर दिया पर, हे जेठवा, मुझ परदेसिन की प्रेम-पीड़ा को पहिचाना नहीं।

शब्दार्थ — जेठी राण - जेठवा; तांणी ने - खींच खींच कर; मारचा - मारे; बाथा भरि भरि - अनगिनत।

---

[1] सग। [2] प्रीत। [3] माया।

– ८२ –

काचो घडो कुम्हार, अणजांणे उपाड़ियो,
भव रो भांगण हार, जेठी रांण जांण्यो नहीं।*

भावार्थ • हे जेठवा, जिस तरह कुम्हार कच्चे घडे को लापरवाही से उखाड लेता है, उसी प्रकार तुमने विना सोचे-समझे ही मुझ से प्रेम-सम्बन्ध बढा कर मेरा जीवन नष्ट कर दिया।

शब्दार्थ — काचो - कच्चा; घडो - घडा; अणजाणे - अज्ञानतावश; उपाड़ियो - उखाड लिया; भव - संसार।

– ८३ –

हूं अबळा री जात, जूण नार री जोयलें,
पग मे बेडी घात, गयो गुमानी[1] जेठवो।

भावार्थ • मुझ अबला नारी के जीवन की विवशताओं की ओर भी तो कोई देखे! मेरा प्रिय गर्वीला जेठवा, मेरे पैरों में प्रेम की बेडी डाल कर न जाने किधर चला गया।

शब्दार्थ — अबळा - अबला; जूण - जीवन; नार - नारी; जोयले - देखने; घात - डाल कर, गुमानी - गर्वीला।

*इस सोरठे का अर्थ मेघाणीजी ने और तरह से किया है—पृ. सोरठा नं ५३।
[1]गुमेत्री।

— ८४ —

फागरण महिने फूल, केसूड़ा फूल्या घणा,
मूघा करोनी मूल, आवीने आभप रा धणी।

भावार्थ • फागुन महीने मे केसू के अनगिनत रंगीन फूल खिल उठे हैं । हे आभप के धनी जेठवा, इन फूलो का मोल तो तुम्हारे आने पर ही होगा, अन्यथा ये सब व्यर्थ हैं ।

शब्दार्थ — फूल्या - फूले; घणा - बहुत; मूघा - मंहगे; करोनी - करोना; मूल - मूल्य; आवीने - आकर।

— ८५ —

मोटो उफण्यो मेह,[1] आयो धरती धरवतो,
मुझ पांती रो श्रेह, छांट न वरस्यो जेठवा।

भावार्थ • घनघोर वर्षा उमड़घुमड़ कर धरती पर सहस्त्र धाराओं मे उतर आई, पर हे जेठवा, मुझ तृषित अभागिन के लिए तो एक बूंद भी नहीं बरसी।

शब्दार्थ — मोटो - बड़ा (खूब); उफण्यो - उफना, मेह - वर्षा, आयो - आया; वरस्यो - बरसा।

---

[1]मोटी छांटां मेह।

– ८६ –

थें पटकी पाताळ, ऊंची ले आकास तक[1],
पगथ्यो वण पाताळ, जीव उठूं रे जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, तेरे प्रेम-संसर्ग ने मुझे आकाश की ऊँचाई तक पहुँचा दिया था पर विछोह ने ठेट पाताल मे गिरा दिया है। यदि अब भी तू अपनी प्रेम रूपी सीढी का सबल दे दे तो मैं पुनः जी उठूंगी।

शब्दार्थ — पटकी - गिरादी; पाताळ - पाताल; पगथ्यो - सीढी; वण - बन कर।

– ८७ –

लागालो इण चाह, अणियाळा अलता जिहि,
सड संठीर थयाह, जड़िया पिंजर जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, मेरी प्रेम भावना तेरे ही तीव्र रंग मे रंगी हुई है जिसमे मेरा समस्त शरीर तेरे प्रेम-बन्धन मे मजबूती के साथ बंध गया है।

शब्दार्थ — लागालो - लगा हुआ, अलता - लाल रंग; संठीर - मजबूत; थयाह - हुआ; पिंजर - शरीर।

---

[1] लग।

— ८८ —

जो जाइस तो जाह, निरगुण जनि छोहो करे,
तूझ विहूणी नाह, जीवू लागी जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, तू जाता है तो जा पर तेरा मेरी आत्मा के साथ विछोह कभी नही हो सकता। वियोग मे भी मेरा मन सदैव तेरे समीप रहेगा।

शब्दार्थ — जो - यदि; जाइस - जाता है, छोहो - विछोह, विहूणी - बिना, नाह - नाथ।

— ८९ —

खीमरा खारो देस, मीठा बोला मानवी,
नुगरा किसा सनेह, जेठीराण बोल्या नही।

भावार्थ • हे खीमरा,• यह देश कडवे आदमियो का है। यहाँ के लोग केवल मुंह पर ही मीठा बोलना जानते हैं। उनके हृदय मे प्रेम नहीं। इसलिए ऐसे कृतघ्न लोगों से प्रेम कैसे हो ? फिर जेठवा तो सीधे मुंह हमसे बोलता तक नही।

शब्दार्थ — खारो - कडवा, मीठा बोल - मीठे बोलने वाले; मानवी - मनुष्य; नुगरा - कृतघ्न; बोल्या - बोला।

---

•खीमरा ऊजळी का कोई साथी है जिसे वह सम्बोधित करती है। यह प्रसग उस समय का प्रतीत होता है जब ऊजळी जेठवा की राजधानी मे उससे मिलने जाती है।

– ६० –

कुवळ नयरण कुळ सुच्छ, म्रगनयणी मनां समी,
मुंहडै आगळ मुच्छ, जम क्यू[1] जासी जेठवा।

भावार्थ • मैं कमलनयनो वाली विशुद्ध कुल की नारी हूँ। म्रगनैनी का सा मुझ मे सौन्दर्य है। तुझ जैसे मर्द को मैंने अपना जीवन समर्पित किया है, फिर भला तुझे न पाकर यह जीवन कैसे व्यतीत होगा।

शब्दार्थ — कुवळ - कमल; कुळ - कुल; सुच्छ - स्वच्छ; मुहडै - मुंह के; आगळ - सामने (पर); जासी - जाएगा।

– ६१

गया तमगरण करेह, हेता सुध वसता हिये,
कर मुझ माळ[2] ठवेह, जळ वसां जोगी थया।

भावार्थ • हे जेठवा, मेरे हृदय में तू किसी दिन प्रेमाधिक्य के साथ बसा हुआ था, पर अब तुम्हारे विछोह के कारण मेरे हृदय मे अंधेरा हो गया है। अब तो मैं तेरे नाम की माला जपती हुई केवल जल के आधार पर दिन काट रही हूँ।

शब्दार्थ — तमगण - अंधेरा, करेह - करके, हेता - स्नेह; वसता - बसते थे; वसा - बसती हूँ।

---

[1] किम। [2] कीदरी।

– ६२ –

वीणा जंतर तार, थें छेड़्या उण राग रा,
गुण ने रोऊं' गंवार, जात न भींकूं जेठवा।

भावार्थ • हे जेठवा, तुमने किसी दिन प्रेम-वाद्यो के तार पर स्वर्गिक रागिनी छेड़ कर मुझे मुग्ध कर दिया था। मैं तो तेरे उन्हीं गुणो की दीवानी हूँ। जातपांत से मुझे कोई सरोकार नही।

शब्दार्थ — जतर - एक वाद्य; छेड़्या - छेड़े; रोऊ - रोती हूँ (बिलखती हूँ); भींकू - लालायित होती हूँ।

– ६३ –

जिण सूं लाग्यो जोय, मन सोही प्यारो मना,
कारण और न कोय, जात पात रो जेठवा।

भावार्थ • जिस मन मे यह मन रम गया है वही उसे प्रिय है। हे जेठवा, इस प्रेम-मिलन मे जातपांत के भेदभाव का कोई दखल नही हो सकता।

शब्दार्थ — जिण सू - जिससे, लाग्यो - लगा, प्यारो - प्यारा।

– ६४ –

विछडरण सूं दीवार, विधि सु पेख्यो वल्लहो,
संभारू संसार, मनह न मानै मेहुउत।

भावार्थ ● किसी दिन विधाता की कृपा से मेरा प्रिय जेठवा मुझे मिला था पर आज विरह की दीवार बीच मे खडी हो गई है। ससार भर मे मैं उसे ढूंढ रहो हूँ पर फिर भी मन को कही धैर्य नही मिलता।

शब्दार्थ — विछडरण - वियोग; सूं - से, पेख्यो - देखा; वल्लहो - प्रिय; संभारू - सुध लू (खोजूं); मनह - मन।

## परिशिष्ट

— क. अनुक्रमणिका

— ख. जेठवा के गुजराती मोरठे

— ग. मूल्याकन

ण, नारी नेह तीनू निरख ,
ाण, जोडी विछड्या जेठवा । ३१

चोर, रैण बिछोवा राखिया ,
ग्रौर, (तो) जनना राखू जेठवा । ४०

ग्रपार, पडियो जद पीधो नही ,
ग्रगार, जीव न धापै जेठवा । ४८

ारंग बार, ग्राटे विहु ग्रस्त्री तणै ,
ाणण हार, मूड न जाणं मेहउत । ५४

जड़िया जाह, ग्राघे जाग्रे उर महे ,
कोण कराह, जडिये जाते जेठवा । ५४

दीसे जावाह, बाता ग्रे रहमी भळे ,
लेगो हाताह, जीवण रो मुख जेठवो । ३६

हृथळेवो जोड, परणायां मेलै प्रथम ,
माथे रो मौड, ओऊं किण दिन जेठवा । ३४

ग्नमनडे जग माय, मन मौजा माणी नहीं ,
नैणा नेह छिपाय, जिऊं किता दिन जेठवा । २६

जळ पीधो जाडेह, पावासर रे पावटे ,
नैनकिये नाडेह, जीव न धापै जेठवा । २७

जाता समै न जोइ, जो जाता जोवै नही ,
ारि नैम्फ्म रोइ, करि कादर काटो हियो । ६१

ार, दीसै मारो ने दरम ,
नार, जिरो न दीसे जेठवो । २७

ऊंचा ते अळगाह, भुंइ पडिया भावै नही,
थुडी पाखळी फिरताह, जीव गमायो जेठवा। ४६

•

करणी पजै जकाय, कर सोहै कामिण तणे,
तोमे पडी तिकाय, मिळै न सगियां मेहउत। ५७

•

कागा काय न काय, सूण सु कहे सुहावणा,
निगमी मिळसी नाय, जो-जो हारी जेठवा। ४३

•

काचो घडो कुम्हार, अणजाणे उपाडियो,
भव रो भागण हार, जेठीराण जाण्यो नही। ८२

•

कुवळ नयण कुळ सुच्छ, अगनयणी मना समी,
मुहडै आगळ मुच्छ, जम क्यू जासी जेठवा। ६०

•

कोयल वाळी कूक, सालै मो उर मे सदा,
हिवडै हालै हूक, जग मे मिळै न जेठवो। ४३

•

खारी लागै खेळ, बाळा नै बूढा तणी,
मना न होवै मेळ, जोडी बिना न जेठवा। ५३

•

खीमरा खारो देस, मीठा बोला मानवी,
नुगरा किसा सनेह, जेठीराण बोल्या नही। ८६

•

गया तमगण करेह, हेता सुध वमता हिये,
कर मुझ माळ ठवेह, जळ वसा जोगी थया। ६१

•

घटघल हलियो जाहि, पिंजर पग मांडै नही,
काळेजे मे कोई, म्यान विहूणीं मेहउत। ५८

•

घण बिन थाट थयाह, अहरण आभडिया नही
सीप समदा माहि, मुहगा मोती मागिया। ५६

चकवा सारस वाण, नारी नेह तीनू निरख,
जीणो मुसकल जाण, जोडी बिछड़या जेठवा। ३१

•

चकवा चाकर चोर, रैण बिछोवा राखिया,
अव मिळ जावै और, (तो) जतना राखू जेठवा। ४०

•

चढ़ियो नीर अपार, पड़ियो जद पीधो नही,
गूदळिये जळगार, जीव न धापै जेठवा। ४८

•

चढ़ूं ज चौरग बार, माटे बिहू अस्त्री तणे,
तिण तू जाणण हार, मूढ न जाणै मेहउत। ५४

•

जजर जड़िया जाह, आघे आग्रे उर महे,
कूंची कोण कराह, जडिये जाते जेठवा। ५४

•

जग दीसै जाताह, बाता श्रे रहसी भळे,
हित लेगो हाताह, जीवण रो सुख जेठवो। ३६

•

जग हथळेवो जोड, परणाया मेले प्रथम,
मो माथै रो मौड, जोऊं किण दिन जेठवा। ३४

•

जनमतड़े जग माय, मन मौजां माणी नही,
नैणा नेह छिपाय, जिऊ किता दिन जेठवा। २६

•

जळ पीधो जाडेह, पावासर रे पावटे,
नैनकिये नाडेह, जीव न धापै जेठवा। २७

•

जाता मर्म न जोइ, जो जाता जोवै नही,
मरि मरि नैण म रोइ, करि काइर काठो हियो। ६१

•

जानो जग मसार, दीसै सारां ने दरग,
भव भव रा भरतार, जिको न दीसै जेठवो। २७

जाळू म्हारो जीव, भसमी ले भेळी करूं,
प्यारा लागो पीव, जूरण पलटलू जेठवा। ३२

•

जामू कहिये जाय, कहिये सैं कानी थया,
ग्रालूध्या उर माय, मावै नाही मेहउत। ५६

•

जिण दिन जलम लियोह, प्रीत पुराणी कारणै,
वाल्हा भूल गयोह, जोगण करग्यो जेठवा। २४

•

जिण सू लाग्यो जोय, मन सो ही प्यारो मना,
कारण ग्रौर न कोय, जात-पात रो जेठवा। ६३

•

जेठवा जुग च्यार, सजना थू साथे रह्यो,
बिरही देख बिचार, जोगण करग्यो जेठवा। ४०

•

जेठवा जळ इक जात, जळ मे जात हुवै नही,
ग्राय वरे री भात, पाणी पा बरमा तणो। ६२

•

जेठवा पलटू जूण, मिनख देह पलटू मुदै,
कहो बणासी कुण, जीव रखाळो जेठवा। २६

•

जेठवा हमो जाय, सपने ही साथें हुवै,
जग मैं प्रीत जताय, जूग पलट सू जेठवा। ३६

•

जेठे तणी जगीस, मन हू ते मेली नही,
वाल्हा मिलण् व्हीस, जोडी तो सग जेठवा। ६३

•

जो जाइस तो जाह, निरगुग जनि छोहो करे,
तूझ विहूणी नाह, जीवू लागी जेठवा। ८८

•

जोगी तपै जिकाय, ग्रागण बिच ग्रातो रहै,
तोमे पडी तिकाय, जुडै न मगिया जेठवा। ५३

जोड़ी जग मे दोय, चक्वे नै सारस तणी,
तीजी मिळी न कोय, जो जो हारी जेठवा। २८

•

जोता जग सारोह, ग्रौरे दृष्ट न ग्राविया,
थयो जेठा थारोह, परवत हिवड़ो पेट मे। ५६

•

जोवन पूरे जोर, माणीगर मिळियो नही,
मारै जग मे सोर, (हू) जोगण होगी जेठवा। २५

•

जोवन रो मद जोर, मेहो पण मिळियो नहीं,
कोरी काजळ कोर, ज्यूं नैणा बिन जेठवा। ४६

•

टोळी स टळनाह, हिरणा मन माठा हुवै,
वाल्हा बीछड़नाह, जीणो किण विध जेठवा। २३

•

टोळी सूं टळियाह, वाला हर हु विछोहिया,
थोरी हाय ययाह, मो किम जीवै जेठवा। ५१

•

डहकियो डफर देख, वादळ थोथो नीर बिन,
हाथ न ग्राई हेक, जळ री बूंद न जेठवा। ५२

•

तन धन जोबन जाय, ज्यूंही जमारो जावसी,
प्रीतम प्रीत लगाय, जोगण करग्यो जेठवा। २५

•

तमाखू तो पियाह, भूंडी लागै भूम मे,
दुखियत ममन लियाह, (वं) जीम्या पाछै जेठवा। ३२

•

ताळा गजड़ जड़ेह, कूंची मे काने थयो,
ऊघड़सी थायेह, जड़िया रहसी जेठवा। २६

•

तावड़ तड़तड़नाह, थळ ऊंचो चढ़ना थका,
साथी सड़सड़नाह, जाडी छाया जेठवा। ५२

तिमिया टळवळियाह, आधी राति ओजागिया,
लाधो लू आथ्याह, जळ सरीखो जेठवो। ६१

•

तो बिन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी,
बिलखतडी बीहाय, जोगण करग्यो जेठवा। ३०

•

थें पटकी पाताळ, ऊंची ले आकास तक,
पगथ्यो बण पाताळ, जीव उठू रे जेठवा। ६६

•

दरसण हुआ न देव, भेव बिहुणा भटकिया,
सूना मिन्दर सेव, जनम गमायो जेठवा। ५७

•

देखी जूणा दोय, नार पुरस भेळा निपट,
कहसी वाता कोय, जोग तणी जो जेठवा। ४६

•

देखू नैणा दोय, चकचूंधो छाई चहूं,
कह्‌यो री दीसें कोय, जीवण जोती जेठवा। ३७

देखो दो रा दो'र, सदा एक गत सारसा,
आवें कदे न ओर, जाय जिमा दिन जेठवा। ४७

•

धरती अवर धार, जळ थळ मे रेवें जठे,
अबळा रो आधार, जोती फिरूं म्हैं जेठवो। ४१

धरती रवि ससि धीम, साच तणी साखा भरें,
जग मांही जगदीस, जिनें गिणीजें जेठवा। ४४

•

घोड़ा बगतर धार, जोगण हो जग मे फिरूं,
हरदम माळा हाथ, जपती रहसू जेठवा। ३४

•

निरखी जोया नग्ग, (जे) मोल मुहगा जाणनी,
उठग्यो बाघो तग्ग, जांघ्या पाटें जेठवा। ४६

नैणा निजर निहार, तीन लोक देख्यो तुरत,
अवळा रो आधार, जको न देख्यो जेठवो। ३७

•

नैणा लागो नेह, उर अंतस माही बसै,
सजना साच सनेह, जुग मे मिळै न जेठवो। ४४

•

पपैया प्याराह, पिव पिव कर बोलै प्रथम,
सह रजनी स्याराह, जोवन रो मद जेठवा। ४२

•

पल जाएँ दिन जाय, दिन जाएँ पल ज्यूं दरम,
पल एक वरस दिखाय, जावण लागा जेठवा। ४५

•

परदेसी री प्रीत, जेठी रांण जाणी नहीं,
तागी ने मारया तीर, वाथा भरि भरि जेठवा। ६३

•

पाबासर पैठेह, हंसा भेळा ना हुआ,
बुगला ढिग बैठेह, जूग गमाई जेठवा। २८

•

पाबासर पैसेह, जो कोई हेरयो नहीं,
बग पागे बैसेह, जनम क्यू जागी जेठवा। ५०

•

पाबासर री पाज, इगो हेरण हालिया,
कोई न सरियो काज, जागा सूनी जेठवा। ५४

•

पैली कीन्ही प्रीत, भूल गयो वाल्हा सजन,
मन मे म्हारे मीत जीव वसै थू जेठवा। २४

•

पैले भव रो पाप, सुगणो सो लागो सही,
महूं विरह सताप, जीऊ किण रे जेठवा। ३३

•

पैली सागर पार, जे इलदो तू मालती,
पैठ गई पल्लाय जुग गमाई जेठवा। ३५

फागण महिने फूल, केसूडा फूल्या घणा,
मुघा करोनी मूल, आवीने आभप रा धणी। ६५

•

बहतो जळ छोडेह, पुसली भर पीधो नही,
नैनकडे नाडेह, जीव न धापै जेठवा। ६२

•

वालम सू बिछोडि, काई थे करता कियो,
जोगण हूं जुग कोडि, जुडे नही मो जेठवो। ६०

•

भसमी अंग भिडाय, हाएा लाभ देखी हमे,
नैणा नेह छिपाय, जाय बस्यो जी जेठवो। ४७

•

मना न होवे मार, लोही जा लेवे चढै,
सुध बाहिरो ससार, साचो आघा मेहउत। ५६

•

मन ही मन रे माय, केवा री सुणसी कवण,
हिवडो हिल हिल जाय, जिऊ जिता दिन जेठवा। ३८

•

मोटो उफण्यो मेह, आयो धरती धरवतो,
सुभ पाती रो श्रेह, द्याट न बरस्यो जेठवा। ६५

•

मोरा मन माणेह, भडलोरा आवै जदै,
जिवडो मो जाणेह, जाऊ किण दिस जेठवा। ४२

•

रही हुती मन राचि, मन लाये मूवो गयो,
वें थो वीजे काचि, मोती भूडं (जो) मेहउत। ६०

•

रूनी रने घरेह, जानाही जोयो नही,
बहिला बळण करेह, जुग जीवू जी जेठवा। ५०

•

लागा लो इग चाह, घणियाळा घनता जिहि,
गइ मठीर घयाह जडिया पिंजर जेठवा। ६६

लागो लोचण लाह, अणियाळा अलता तणो,
मरसूं सेर थयाह, जोडी तोमूं जेठवा। ५५

•

वे दीसै असवार, घुडला री धूमर किया,
अबळा रो आधार, जको न दीसै जेठवो। २६

•

बिछडन सू दीवार, विधि सुपेख्यो वल्लहो,
सभारू ससार, मनह न माने मेहुउत। ७०

•

वीणा जतर तार, ये छेडचा उण राग रा,
गुण ने रोवू गवार, जात न भींकू जेठवा। ६६

•

मारम मरता जोय, सारसणी मरसी सही,
लाखीणी म्रा लोय, जग मे रहसी जेठवा। ३८

•

हिय रो तजियो हार, तन तजियो तौरे लिये,
नाजुकडी मो नार, जोगण करगो जेठवा। ३६

•

हियो ज डुळ डुळ जाय, बेकर री बेरी ज्यू,
कारी न लागै काय, जीव डिगाया जेठवा। ३३

•

हू अबळा री जात, जूण नार री जोयले,
पग मे बेही घात, गयो गुमानी जेठवो। ६४

• •

# जेठवा के गुजराती सोरठे

स्व. झवेरचन्द मेघाणी द्वारा संकलित

## मेह ऊजली*

सैकड़ो वर्ष पहले यह घटना घटित हुई थी, ऐसा माना जाता है। बरडा पर्वत के एक किनारे पर चारणो की बस्ती थी। वहाँ रह कर चारण अपने पशुओ को चराते थे। एक बार वर्षा ऋतु की रात्रि मे मूसलाधार वर्षा हो रही थी। इस बस्ती के निवासी अमरा बाजा नामक चारण के द्वार पर एक घोड़ा आकर ठहरा। घोर अन्धकार मे चारण की युवती कन्या ने घोड़े पर हाथ फेरा। वर्षा मे भीगने से ठड के कारण बेहोश हुआ सवार घोड़े की गर्दन पर गाँठ के समान लटका हुआ दिखाई दिया। उसने उसे नीचे उतारा। घर मे ले गई और होश मे लाने का अन्य कोई उपाय न देख कर चारण कन्या उसके साथ शय्या पर सोई। उसकी देह को अपनी देह से गरमी पहुँचा कर जीवित किया। सवार घूमली नगर के राजकुमार मेहजी थे। ऊजळी ने स्वयं अपने अंगो को उसके अंगो से स्पर्शित समझ कर अपना हृदय मेहजी को अर्पित किया। मेहजी ने भी अपनी प्राणदात्री पहाड़ी सुन्दरी से विवाह करने का वचन दिया।

फिर तो अनेक बार मेहजी पर्वत के किनारे आते। दोनो प्रेमी मिलते। विवाह के मनसूबे बाँधते। परन्तु क्षत्रिय पुत्र चारण कन्या से विवाह नहीं कर सकता, इन दोनों का सम्बन्ध तो भाई बहिन का ही है। यह रूढ़ि बाधा बन कर उपस्थित हुई।

राजपिता को तथा नागरिको को इस गुप्त सम्बन्ध का पता चल गया। सब इस रूढ़िमग्न व धारणा हाहाकार कर उठे। उन्होंने सोचा यदि यह महा पाप हो जाएगा तो ईश्वर का कोप हम पर उतरेगा। कुमार मेहजी को चेतावनी देने की युक्ति सोची गई। कई कहते है कि गाँव के महाजनो ने गाय के ऊपर मनुष्य को बैठाया और कुमार के सामने उसका जलूस निकाला। अन्यो का कहना है कि राजपिता ने कुछ मनुष्यो को एकत्रित किया और उनके भोजन के लिये गाय के वध की तैयारी की। इस प्रकार संकेत के द्वारा उन्होंने मेहजी को बता दिया कि चारण कन्या के साथ विवाह गौ-हत्या और गौ-सवारी के पाप के समान है और इस पापाचरण से प्रजा हाहाकार कर उठेगी।

कुमार अपने हृदय की इच्छाओ को कुचल कर महल मे बैठ गए। ऊजळी ने अनेक दिनों

---

*स्व० मेघाणीजी द्वारा सम्पादित सोरठी गीत कथाओं में से साभार।

तक उनकी प्रतीक्षा की। विवाह की तिथि बीत गई। आकुल वन-वासिनी अधिक दिनो तक मन की इस व्यथा को सहन न कर सकने के कारण हिम्मत करके घूमली आई। मेहजी के महल तक आई। पहरेदारो ने उसे ऊपर नही चढने दिया। उसने आंगन मे खडे रह कर मेहजी को पुकारा "एक बार तो मुंह बता। मेहजी ने आवाज सुन कर खिडकी से झांका और उत्तर दिया—क्षत्रिय से चारण कन्या का विवाह नही हो सकता। अपनी प्रीत को अब भुला देना।"

ऊजळी बहुत रोई। शाप दिया। अपना खप्परेल उठा कर ठागा पर्वत पर चली गई और सदा के लिये कौमार्यव्रत धारण किया।

कहते हैं कि इस शाप के परिणामस्वरूप कुमार मेहजी के शरीर पर कोढ निकला। इसमे उसकी मृत्यु हुई। इस अवसर पर ऊजळी आई और उसके शव के साथ जल गई।

दोहो मे ये सब प्रसग नही हैं। केवल ऊजळी की प्रतीक्षा के उद्‌गार, विरह के स्वर, मेहजी का उत्तर तथा स्वय उसका दिया हुआ शाप, बस इतना ही है। शेष सब लोकोक्तियाँ हैं।

यह कथा श्री जगजीवन का. पाठक ने सन् १९१५ मे 'गुजराती' के दीपावळी अक मे लिखी थी तथा 'मकरध्वज वशी महीपमाला' पुस्तक मे भी लिखी है। इसमे सम्पादक तळाजा के 'एभलवाळा' का प्रसग (सात दुकाळी, मनेभ हरण आदि · देखो रसधार : १ : पृष्ठ १८८) मेहजी के साथ जोडते हैं। इसके पश्चात् यह प्रसग बरडा पर्वत पर नहीं परन्तु दूर ठागा पर्वत पर घटित मानते है। मेहजी को श्री पाठक १४४ वी पीढी मे रखने हैं परन्तु उनका वर्ष व सम्वत् नही बताते। उनके द्वारा बाद के १४७ वें राजा को १२ वी शताब्दि मे रखने मे अदाज से मेहजी का समय दूसरी या तीसरी शताब्दि के भीतर किया जा सकता है। परन्तु वे स्वय दूसरे एक मेहजी को (१५२) सवत् १२३५ के अन्तर्गत लेते हैं। ऊजळी वाले मेहजी यह तो नही हो सकते। कथा के दोहे १०००-१५०० वर्ष प्राचीन तो प्रतीत नहीं होते। घटना होने के पश्चात् १००-२०० वर्षों मे इसका काव्य साहित्य रचा गया होगा। यदि इस प्रकार गणना करे तो मेह-ऊजळी के दोहे सम्वत् १४००-१५०० तक प्राचीन होने की कल्पना अनुकूल प्रतीत होती है। तो फिर इस कथा के नायक का १५२ वाँ मेहजी होने की सभावना अधिक स्वीकार करने योग्य प्रतीत होती है। •

– १ –

अमरा काजा नी ऊजळी, भाण जेठवा नो मेह ,
जे दिनां सूतेल साथ रे, ते दिनो वाधेल नेह ।

• ऊजळी अमरा काजा नामक चारण की पुत्री थी। मेह भाण जेठवा के पुत्र थे। जिस दिन वे दोनो एक ही शय्या पर सोए उसी दिन से उनमे स्नेह हो गया। ..

– २ –

ठागे रेती ठठ, आघे पण ओरे नहि ,
आव्यु बरडे वेट, पाजर दागे पाणिये ।

ऊजळी ठाणा पर्वत पर (पांचाल प्रदेश) में रहती थी। बहुत दूर रहती थी परन्तु उसका शरीर होनहार के कारण बरडा बेट में आया। ..

– ३ –

उभी ढमढोळे, ससारे शोधो वळी ,
मन नो पारख मेह, भेटू मळियो भाण नो ।

• धरती का चप्पा-चप्पा उसने छान मारा और सारे विश्व को खोज लिया लेकिन उसके हृदय को पहचानने वाला विश्वासपात्र केवल भाण जेठवा का पुत्र मेह ही मिला। ..

– ४ –

फरता आवेल फुल, माळी कोई मळियो नहि,
माख शुं जाणे मूल, भमर पाखे भाणना।

• हे भाण के पुत्र मेह, यौवन फुलवारी मे विभिन्न प्रकार के फूल खिले हैं परन्तु इसे कोई माली नही मिला। रस-ग्राही भ्रमर के बिना सामान्य मक्खी इन फूलो का मूल्य ही क्या समझे। • •

– ५ –

जुना तजो ने नीर, नवा नवाण निहाळवा,
फरता कुवा फेर, जळ अेनुं ऐ जेठवा।

• हे मेह जेठवा, पुराने जलाशय को छोड़ कर नये कौन से प्रेम-जलाशय पर जाऊँ ? कुए गहरे हैं पर जल तो एक का एक ही है। • •

– ६ –

मे मे करता अमे, मेना तो मन मा नहि,
वाला पळया वदेश, विसारी वेणुना धणी।

• मै तो हे मेह, हे मेह पुकारती हूँ पर मेह के मन मे तो यह बात ही नही आती। मेरे प्रियतम तो मुझे विसार कर परदेस चले गये — ए वेण पर्वत के स्वामी ! • •

– ७ –

तोण्यु दीयो तमे, जेठवा जोदाये नहि,
तारा अगना अमे, भूख्या छैअे भाणना।

• हे जेठवा सकुचित हृदय से जैसे कोई आश्रित को आश्रय देता है, वैसे ही तुम सकु चित होकर मुझ से स्नेह करते हो। तो फिर किस प्रकार जीवित रहा जाए ? हे भाण के पुत्र मैं तो तुम्हारे शरीर की भूखी हूँ। • •

– ८ –

तूं आव्ये उमा घणो, तुं ग्ये गळे भळाण,
मे थाने मेमान, व घडी वरड़ा ना घणी।

• हे मेह, तुम जब आते हो तब बहुत ही आनन्द आता है। तुम्हारे जाने से वेदना के कारण जलन होती है। हे मेह, दो क्षणों के लिये तो मेहमान बनो। ..

– ९ –

मे तुं तो मेह, वूठे वनस्पति वळे,
भाकळने जामे भोम, नो पाके भाण ना।

• हे जेठवा, तुम तो मेह (वर्षा) के समान हो। तुम्हारे बरसने से ही वनस्पति फूलती है। केवल रिमझिम (कुछ बूंदों) से अन्न नहीं पक सकता। तुम्हारे भरपूर प्रेम-सिंचन के बिना थोडी-थोडी प्रीत करने से मेरा जीवन नहीं सुधर सकता। ..

## वर्षा के आगमन पर

[ इस प्रकार प्रतीक्षा करते-करते वर्षा ऋतु आई। वर्षा को देख कर ऊजळी के मन की व्यथा बढ़ गई। 'मे' (वर्षा) तथा मेह (जेठवा) दोनों के साम्य की कल्पना कर के उसने विलाप किया। इस 'विलाप'-वर्णन में कवि ने बादल और बिजली का रूपक बांधा है, ऐसा प्रतीत होता है। ]

– १० –

मोटे पागे मेह, आव्यो धरतो धरवनो,
मम पातीनो मेह, भाकळ न वरस्यो जेटवा।

• यह मेह मोटी-मोटी धाराओं से धरती को तृप्त करने आ पहुँचा, परन्तु मेरे लिये तो मेह जेठवा छोटी-छोटी बूंदों के रूप में भी नहीं बरसा। ..

– ११ –

गरना डूंगर जागिया, फरक्यां वेणु - वन,
मेह तमारूं मन, वकोळ थ्यु वरडा-धणी।

• ये गिर के पर्वत जाग उठे। वेणु पर्वत के वन के वन भी खिल गये हैं। फिर भी हे मेह, तुम्हारा अन्तःकरण क्यो धूमिल (भाव-शून्य) रहा। • •

– १२ –

दावळना दाझेल, पणगे पालवीश्रे नहि,
एक वार श्रेली करे, वन कॉळे वेणु धणी।

• मैं तो दावानल मे झुलसे हुए के समान हूँ। एक दो बूँद से पुनः पल्लवित नही हो सकती। हे वेणु पर्वत के स्वामी, यदि आप सतत (आठ दिन तक) वृष्टि करेंगे तो ही हमारा जीवन फूलेगा, अन्यथा नही। तात्पर्य यह कि थोडे स्नेह मे मैं तृप्त नही हो सकती।

– १३ –

नाणे दाणो नव मळे, नारो छाडे नेह,
(का) वीजळीये वळ भीश्रो, (का) मादो पड्यो मेह।

• हे मेह, तुम बरसने में विलम्ब करते हो, इसी कारण धन देते हुए भी अन्न नहीं मिलता। अन्न के अभाव से स्त्री स्वामी के स्नेह को त्याग कर चली जाती है। या तो तुम्हारी प्रियतमा बिजली ने तुम्हें रोक लिया है या तुम अस्वस्थ हो गये हो। • •

## बारामासा

प्रत्येक महीने मेह की प्रतीक्षा करती हुई ऊजळी तडपती है.—

– १४ –

कारतक महिना माय, सौने शियाळो सांभरे,
टाढडीयु तन माय, ओढए दे आभपरा धणी।

• कार्तिक महीने मे सबको ही शीतकाल की याद आती है । शरीर को ठंड लगती है। अत. हे आभपरा के स्वामी मेह-जेठवा, तुम मुझे अपनी स्नेह रूपी ओढनी से ढक दो। ..

– १५ –

मागशर मां मानव तणा, सहुना एकज श्वास,
(ई) वातुंनो विश्वास, जाण्यु करशे जेठवो।

• मार्गशीर्ष महीने मे तो सब मनुष्यो का एक ही श्वास हो जाता है ( प्रियजन पृथक रह ही नही सकते )। मैं भी मानती हूँ कि इस बात को समझ कर मेह जेठवा भी मेरे पास आएगा। ..

– १६ –

पोष महिना नी प्रीत, जाण्यु करशे जेठवो,
राणा राखो रीत, बोल दई बरडा धणी।

• मैंने तो यह सोचा ही था कि मन मे पोष के महीने मे तो जेठवा प्रेम करेगा ही। हे बरडा पर्वत के स्वामी, वचन देने के पश्चात् तो सज्जन बनो। ..

– १७ –

माह महिना मांय, ढोल त्रंबाळू धूमके,
लगन चोवां ले आव, वधावु वेणुना धणी।

• माघ के महीने में विवाह की ऋतु होने के कारण ढोल और नगाड़े बजते हैं। हे वेणु पर्वत के स्वामी मेह, तुम शुभ मुहूर्त में विवाह की लग्न-पत्रिका भेजो तो मैं उसे वधा कर (स्वागत) लेलू।

– १८ –

फागण महिने फुल, केशूडा कोळ्यां घणा,
(एनां) मोघां करजो मूल, आवीने आभपरा धणी।

• फाल्गुन के महीने में केसूड़े आदि अनेक प्रकार के फूल खिले हैं, परन्तु हे *आभपरा के स्वामी, तुम ही आकर इन फूलों का मूल्य आंको (इस समय ये मेरे मन में व्यर्थ ही पड़े हैं)।*

– १९ –

चैंतरमा चत मांय, कोळामण वळे कारमी,
(अेनो) उलट घणी अंग मांय, आवो आभपरा धणो।

• चैत्र के महीने में बाहरी वनस्पति के समान, मेरे चित्त में भी नयी उमंगों की कोंपलें फूटी हैं। ऋतु का उल्लास मेरे अंग-प्रत्यंग से छलक रहा है। अतः हे आभपरा के स्वामी, तुम आ जाओ।

– २० –

वैसागे वनमाय, आवे मागु ऊतरे,
नम फ्रोली वरमाय, विजोगे वेगुना धणी।

• वैशाख के महीने में आमों पर आम की फसल आती है परन्तु तुम्हारे वियोग में वे पक कर गिर जाते हैं। कोई इनका स्वाद लेने वाला नहीं है।

– २१ –

जेठ वसमो जाय, धर सूकी धोरी तणी,
पूछल पोरा खाय, जीवन विनानां जेठवा।

• जेठ महीना तो इतना बुरा निकलता है कि बैल का कंधा सूख जाता है। निश्चेतन हुए तथा गिरते-पड़ते वे विश्राम लेकर हल खींचते हैं। (मेरे अन्तःकरण की भी बैलो जैसी विवश दशा हो गई है)। ..

– २२ –

अपाढ कोराडो उतर्यो, मैयल पतळ्यो मे,
दलने टाढक दे, जीवन लाभे जेठवा।

• आषाढ भी कोरा ही बीत गया। मेह (वर्षा अथवा जेठवा) तो ठग ही निकला। हे जेठवा, थोड़ा बरस कर ही मेरे हृदय को शात करो तो जीवन को कुछ तो अवलम्ब मिले। ..

– २३ –

श्रावण महिनो सावदो, जेम तेम काढ्यो जे,
तम वण मरशुं मे, भेळा राखो भाणना।

• पूरा सावन मास वर्षा के बिना जैसे-तैसे काटा। अब तो तुम्हारे बिना मेरी मृत्यु हो जाएगी। हे भाण जेठवा के पुत्र, अब तो मुझे अपने साथ रखो। ..

– २४ –

हाथी पूछल्यो होय, (अने) केम करी उठाडिये,
जेठवा विचारी जोय, भादरवो जाय भाणना।

• भादवा का महीना भी सूखा ही बीत रहा है। हे जेठवा, अन्य छोटे पशुओं के चेतनहीन होने पर उन्हें तो किसी भी उपाय से उठाया जा सकता है परन्तु अनावृष्टि के कारण यदि हाथी जैसा बड़ा पशु गिर जाए तो उसे कैसे उठाया जा सकता है। आज यह कि गिरे हुए हाथी के समान गति मेरे बलिष्ट प्रेम की हो गई है। ..

– २५ –

आसो महिनानी आमे, राणा लालच राखीओ,
त्रोडियुं सयुं तमे, जीव्युं नो जाय जेठवा।

• हे मेह, अभी तो आश्विन के महीने में भी तुम्हारी मिलन आशा है। किन्तु तुमने तो स्नेह-जल के सरोवर को ही तोड दिया। अब मुझ से जीवित नहीं रहा जा सकता। ..

– २६ –

मा तणाव तुं मेह, तारा वेठ्या नहि वरतीओ,
(ओक) सगपण ने स्नेह, तारे ताण्ये तूटशे।

• हे मेह, तुम अब अधिक विलम्ब मत करो। तुम्हारा दुःख सहते-सहते तो हमसे वर्ष व्यतीत नहीं किया जा सकता। जगत के स्नेह-सम्बन्ध तुम्हारे खींचने से टूट जाएँगे। ..

– २७ –

वण सगे वण सागवे, वण नातरीये नेह,
वण मावतरे जीवीये, तुं वण मरीये मेह।

• हे मेह, सगों या स्नेहियों के बिना, सम्बन्धियों बिना तथा माता-पिता के बिना भी जीवित रहा जा सकता है, किन्तु तुम्हारे अभाव में तो मृत्यु ही होगी। (यहाँ वर्षा और स्वामी दोनों की समान महिमा गाई गई है।) ..

• • •

निराश ऊजळी घामणरा पर्वत पर घूमती नगर में जाती है। मेह की मेड़ी के सामने खड़ी होकर उसे उलहने देती है —

– २८ –

घामणरे आवी ऊजळी, चारण भूखी छे,
जाऊं किसे हुं जेठवा, मन मुं भायम मे'।

• हे मेह जेठवा, मैं ऊजळी चारणी भूखी-प्यासी घामणरा पर आई हूँ। और कहाँ जाऊँ? मैं बहुत ही दुविधा में हूँ। ..

– २६ –

वाड़ी माथे वादळा, मोलु माथे मेह,
दुख नी दाझेल देह, भोठी पडीग्रे भाणना।

• गगन मे बादल छाए हैं, परन्तु मेह तो महल मे चढ कर बैठा है। मेरी देह दुख से झुलस गई है। हे माण के पुत्र, मैं अत्यन्त लज्जित हो रही हूँ।

– ३० –

मुंझव मा तुं मे, ऊंडा जळमा उतारीने,
मोढु देखाड मे, भोठप म दे भाणना।

• हे मेह तुम मुझे इतने गहरे पानी में उतारने के पश्चात् (इतना स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात्) इस प्रकार लज्जित मत करो। कम से कम अपना मुख तो दिखा दो।

– ३१ –

परवेथा पाछा वळ्या, तरसा झाझी छे,
तुं वण वाला मे, अगन्युं क्यां जई ओलवुं।

• मुझे बहुत प्यास लगी है परन्तु मुझे पानी के स्थान से वापस प्यासा लौटना पड रहा है (भाव यह कि प्रेम के भरपूर स्थान से लौटना पड रहा है)। अब तो बताओ मेह, तुम्हारे बिना मेरी तृषा की अग्नि (प्रेम की अग्नि) को कहाँ जाकर शान्त करूँ?

– ३२ –

ऊनाळाना ग्रमे, लाबा दि' लेवाय नै,
तोण्यु दई ने तमे, जीवना राखो जेठवा।

• हे जेठवा, अब तो हम से विरह रूपी ग्रीष्म के लम्बे दिन नहीं कटते। अब तो जिस प्रकार कोई निर्धन को थोड़ा-थोड़ा कुछ देकर जीवित रखता है उसी प्रकार तुम भी मुझे थोड़ा-थोड़ा स्नेह देकर जीवित रखो।

– ३३ –

वापैयो बीजे पालर, वण पीवे नहि,
समदर भरियो छे, (तोय) जळ नो बोटे जेठवा ।

• हे मेह, पपीहा वर्षा के नये जल के अतिरिक्त अन्य और कही से जल ग्रहण नही करता । समुद्र यदि भरा हुआ होता है फिर भी उसमे चोंच नहीं डालता । यही दशा मेरी है । हालाकि अनेक स्नेह के पात्र हैं परन्तु मेरा मन तो केवल मेह (जेठवा) की प्रीत को ही स्वीकार करता है । ..

– ३४ –

माथे मंडाणो मेह, वरा मेलीने वरसशे,
वरस्यो जई वदेश, ऊनाळो रीयो ऊजळी ।

• यह तो निश्चित ही है कि घिरी हुई काली घटाएँ तो भरपूर वृष्टि करेगी क्योंकि इतनी प्रीत करने के पश्चात् मेहजी अपने सारे स्नेह को उँडेल देंगे । परन्तु हे मेह तुम तो जाकर विदेश मे बरसे हो ( अन्य किसी को अपना स्नेह दिया ) । ऊजळी के लिये तो वियोग की ग्रीष्म ऋतु ही बनी रही । ..

– ३५ –

मे मे करता अमे, वापैया घोडे बोलिये,
नजर विनानो ने (ह), बाधे नै बरडा धणी ।

• पपीहे की भाँति मैं भी हे मेह, हे मेह पुकारती हूँ । किन्तु हे बरडा के स्वामी, दृष्टि मिले बिना स्नेह नही हो सकता । ..

– ३६ –

आव्या आशा करे, निराश ऐने नो वाळिये,
नव डुळ टुकारे, भोटप भाभी भागना ।

• जो आशा-भरे हृदय से आता है उसे निराश होकर लौटाना शोभा नहीं देता । हे भाग जेठवा के पुत्र, तुम्हारी ऐसी तुच्छता से मुझे लज्जा आती है ।

— ३७ —

वरमंड खोटा वादळां, वाये टाढा वा,
मेनु कोई न मानजो, (मेंग्रे) मार्या बाप ने मा* ।

* गगन पर घिरे हुए बादल झूठे हैं। ये शीतल पवन चलाते हैं किन्तु वर्षा के ऐसे अधेरे बादलो पर कोई विश्वास मत करना। ये तो ठग हैं, आशा बँधा कर भी नहीं आते। ये तो स्वय अपने माता व पिता (जल व सूर्य) के हत्यारे हैं। दूसरो की क्या रक्षा करेंगे। ..

मेह जेठवा, खिड़की से झाँक कर उत्तर देता है—

— ३८ —

चारण अेटला देव, जोगमाया करी जाणीयें,
लोहीना खपर खपे, (तो) वुडे बरडानो धणी।

* हे ऊजळी, हम क्षत्रियो के लिये तो चारण जाति के लोग देव तुल्य हैं। तुम चारण-कन्या हो इसलिये तुम्हे तो मैं देवी के समान मानता हूँ। यदि तुम्हारे समान रक्त का पात्र मैं भी पीलूँ तो बरडा के स्वामी का नाश हो जाएगा। ..

— ३९ —

तमे छोरु चारण तणा, लाजु लोपाय ने,
मन बगाडु अमे, तो गभपरो लाजे ऊजळी।

* हे ऊजळी, तुम तो चारण-कन्या हो। तुम्हारी लज्जा और मर्यादा को मैं नही मिटा सकता। यदि मैं अपने मन को बिगाड़ूँ—तुम्हारे से प्रेम करने का कुविचार करता रहूँ तो मेरा आभपरा का पर्वत बदनाम हो जाये। ..

*पानी को सोख कर बादल बनते तथा बादल बनने के पश्चात् ये सूर्य को ढक लेते हैं। इसका यही तात्पर्य है।

– ४० –

कण ने दाणा कोय, भण्य तो दऊं गाडा भरी,
हैये भूख होय, तो आभपरे आवे ऊजळी।

• यदि तुम कहो तो तुम्हें अनाज से भरी हुई गाड़ियाँ दूँ। भविष्य में जब कभी तुम भूखी होओ तब तुम प्रसन्नतापूर्वक आकर यहाँ से अनाज ले जाना। ••

– ४१ –

आया थी जाने ऊजळी, नवे नगर कर नेह,
जाने रावळ जामने, छोगाळो न दे छेह।*

• हे उजळी, यदि तुम्हें अनाज नहीं चाहिये और राजा से ही विवाह करना हो तो तुम सुखपूर्वक नवा नगर जाकर राजा रावळ जाम से स्नेह करो। वह रसिक राजा तुम्हें धोखा नहीं देगा। ••

## हताशपूर्वक रोदन—मेह को शाप—विदा

स्वयं के लिये प्रयुक्त ऐसे तुच्छ शब्दों का स्मरण कर चारण कन्या के रोम-रोम में आग लग गई। उसका हृदय वेदना से भर गया। जिसको जीवन में प्रेम, प्रतिष्ठा और पवित्रता अर्पित की उसके मुख से ऐसे कठोर शब्द सुन कर ऊजळी के सिर पर वज्र गिर गया। वह बिजली के समान कड़क उठी—

– ४२ –

साकर ने सादे बोलावतो, बरडा नां धणी,
(आज) कुना काऊ काढे, जाते दोडे जेठवा।

• हे बरडा के स्वामी जेठवा, आज तक तो तुम मुझे मधुर वचनों से सम्बोधित करते थे, किन्तु आज जाते समय तुम ऐसे शुष्क और तुच्छ शब्द क्यों मुख से निकाल रहे हो? ••

— –

*यह प्रक्षिप्त ज्ञात होता है क्योंकि रावळ उस समय में नहीं था।

– ४३ –

छाणे वीछी चडावीग्रे, टाकर मारे तेह,
मागी लीधो मेह, बरडा ना विलेसर कने ।

• यह सत्य है, तुम इस प्रकार बोलते हो, इस मे कोई ग्राश्चर्य नही। जिस प्रकार उपले मे ग्रटका हुग्रा बिच्छू डक मारेगा ही, यह स्वाभाविक ही है। उसी प्रकार मैने भी हे मेह, बरडा पर्वत पर जाकर महादेवजी से तुम्हे मांगा था। तुम्हारे स्नेह को मैंने जान बूझ कर ग्रगीकार किया इसीलिये मुझे तुम जैसे कृतघ्न के विषदश सहने पडे।

– ४४ –

आवडियु ग्रमे, जेठीराण जाणेल नहि,
(नीकर) पियर पग ढाके, वेसत बरडाना धणी ।

• हे जेठवा राणा, तुम्हारी ग्रधमता इतनी बढ जाएगी यह मैं नही जानती थी, नही तो मैं ग्रपने पग ढक कर पीहर—मायके मे ही पडी रहती। ग्रखड कौमार्य-व्रत धारण करती।

– ४५ –

छेतरीने दीधा छेह, हालीतल हळवां थया,
मन मां नोतु मेह, (तो) भाणना नाकारो भलो ।

• हे मेह, तुमने मुझ से छल-कपट किया। धोखा दिया। मैं यहाँ स्वेच्छा से ग्राई किन्तु मुझे लज्जित होना पडा। यदि तुम्हारे मन मे मेरे प्रति स्नेह नही था तो पहले से मना क्यो नही किया।

– ४६ –

मन मा हुतु मेह, (तो) नाकारो का न मोकल्यो,
लाजु ग्रमणी नेह, भोंठा पाड्या भाणना ।

• हे मेह, यदि तुम्हारे मन मे मेरे प्रति ऐसे कपट के भाव थे तो मुझे पहले से ही मना क्यों नहीं कर दिया। मेरे सतीत्व का हरण करके मुझे लज्जित क्यो किया ?

– ४७ –

परदेशीनी पीड, जेठीराण जाणी नहिं,
ताणी ने मार्या तीर, भाथे भरीने भाणना।

• हे जेठवा राणा, मुझ परदेसिन की व्यथा तुम नही समझ सके। हे भाण के पुत्र, तुमने तो मुझे चुन-चुन कर तीर मारे। मुझे अपने कटाक्ष रूपी तीरो से बेध दिया। ..

– ४८ –

ओशियाळा अमे, टोडाफल टळियां नहिं,
मेणीयात राख्या मे, जामोकामी जेठवा।

• मैं तो तुम्हारी आश्रित बन कर, तुम्हारे घर के द्वार पर दया की याचना करती ही रही। यह दैन्यता दूर ही नही हुई। हे जेठवा, तुमने तो मुझे सदा के लिये कलंकित करके छोड दिया। ..

– ४९ –

वाळोतीयाना वळेल, (अमे) थानुमा ठरियां नहिं,
तरछोडया तमे, जामोकामी जेठवा।

• जब से मैं बालकों के वस्त्रो (गूदडी) मे सोने लायक थी तब से ही दुखी हूँ। मेरा शैशव काल निराधार गया। माता के स्तन से दूध भी नही पीया। और अन्त मे तुमने भी मुझे सदा के लिये त्याग दिया। ..

– ५० –

तावमा माणस जेम, आघा ठेले अन्न ने,
मे'ने लागी एम, अफीण गोखी ऊजळी।

• ज्वर से मनुष्य जिस प्रकार उक्ता कर अन्न को त्याग देता है उसी प्रकार मुझे मेह जेठवा ने भी घृणा से छोड दिया। मैं ऊजळी उसे अफीम के समान कडवी लगी। .

– ५१ –

अभडाणा अमे, मुसलमान मळ्यो नही,
घेलो छाट तमे, जळ नी नाखो जेठवा।*

मैं भ्रष्ट हुई। कोई मुसलमान मिला नही, जिसे स्पर्श करके मैं अपनी भ्रष्टता दूर करती। अत हे जेठवा, अब तुम ही मुझ पर अन्तिम बार पानी का छीटा डालो। ..

– ५२ –

खीमरा खारो देश, मीठा बोला मानवी,
नगणासु शो नेह, बोल्यो ने बरडा धणी।

ऊजळी अपने साथी खीमरा चारण से कहती है,—हे खीमरा, यह बरडा देश बहुत कड़वा है। यहाँ के निर्दय मनुष्य केवल मुख से मीठा बोलते हैं। ऐसे कृतघ्न के साथ स्नेह कैसे हो। चलो हम चलें। बरडा का स्वामी तो बोलता ही नही। ..

– ५३ –

काचो घडो कुमार, अणजाण्ये उपाडियो,
भव नो भागणहार, जेठी राण जाण्येल नाही।

मैंने तो अनजान मे कुम्हार के घर से मिट्टी का कच्चा घड़ा उठा लिया। (कच्चे मनुष्य मे प्रेम किया)। मैंने यह नहीं जाना था कि जेठवा रूपी प्रेम-पात्र सहज ही टूट कर मेरे समस्त जीवन का नाश कर डालेगा। ..

*यदि कोई चाण्डाल को स्पर्श कर लेता है तो भ्रष्टता-निवारण के दो मौलिक रिवाज थे; या तो पानी के छींटे द्वारा अथवा मुसलमान को स्पर्श करके। यहाँ ऊजळी भी मेहाजी के स्पर्श से स्वयं को दोषित मानती है। परन्तु यह अर्थ उचित प्रतीत नहीं होता। यदि ऐसा होता तो ऊजळी छींटा डालने के लिये जेठवे को नहीं कहती।

– ५४ –

आभपरेथी ऊछळचां, जळ मां दीधो झोक,
सरगापरने चोक, भेळा थाशु भाणना।

• आभपरा के पर्वत पर से मैं फेंकी गई। गहरे पानी मे डूब गई। अब तो हे भाण के पुत्र, स्वर्ग के चौगान मे ही अपना मिलन होगा। ..

* * *

इतने कष्ट सहने के उपरान्त भी ऊजळी अपने प्रियतम से स्वर्ग मे मिलने की कामना करती है; किन्तु बाद मे फिर रोष प्रकट करती है—

– ५५ –

मरी ग्यो हत मे, (तो) दलमाथी दझण्यु टळत,
जीवता माणस जे, (अेने) बाळो का बरडा धणी।

• हे मेह, इससे तो यदि तुम मर जाते तो ही ठीक था क्योकि मेरे अन्तर्दाह के चिन्ह तो मिट जाते। हे बरडा के स्वामी, मुझ जीवित मानवी को क्यो जला रहे हो ? ..

– ५६ –

कळ - कळ करशे काग, धुमलीनो धुमट जशे,
लागो वधर्ता आग, राणा तारा राजमा।

• हे राणा, मैं शाप देती हूँ कि, "इस नगरी मे कौए बोलेगे (नगरी उजाड़ हो जाएगी)। धुमली नगर के भवन टूट जाएँगे और तेरे समस्त राज्य मे अधिका-धिक आग बढ़ेगी। ..

– ५७ –

जळ ना डेडा जेह, दबाणा थकां डसे,
(पण) वशीयरन वेडेल, जीवे ना के दि' जेठवा।

• जल मे रहने वाले पामर जन्तु को थोड़ा सा दबाने पर वे डस लेते हैं। इनके डसने से मृत्यु नही हो सकती परन्तु महा विषधारी सर्प के डसने से मनुष्य तो कदापि जीवित नही रह सकता। हे जेठवा, इसी प्रकार नीच मनुष्यो का शाप चाहे न फले परन्तु मेरे समान कुलीन और पवित्र चारण कन्या का शाप तुम्हारा नाश कर देगा। ..

# मूल्यांकन

मूल्यांकन

# ऊजली की विरह - वेदना का मर्म

आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति मनुष्य की जिंदगी में निसंदेह सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। महत्वपूर्ण इसलिये नहीं कि उनका स्वतन्त्र रूप में कुछ मूल्य है। इंसान की जिन्दगी से अलग इनकी स्वयं में एक कानी-कौड़ी भी कीमत नहीं। समय के साथ बदलती हुई मनुष्य की इन अगणित आवश्यकताओं को केवल एक छोटे से शब्द में सीधे रूप से स्पष्ट करना चाहें तो वह है—जीवन। लेकिन आज मनुष्य की यही सबसे बड़ी विडम्बना है कि जिन्दगी के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये आवश्यक इन समग्र भौतिक वस्तुओं ने एक दूसरे ही शब्द में अपने को सन्निहित कर लिया है, और वह है—रोकड़ या पैसा।

पैसा मनुष्य के लिये भौतिक रूप में कतई आवश्यक नहीं है। किन्तु वही अनावश्यक मुद्रा आज इंसान की जिन्दगी का एकमात्र उद्देश्य या साध्य बन कर रह गई है, जिसकी प्राप्ति के लिये मनुष्य ने अपने जीवन और अपने शरीर तक को निमित्त बना रखा है। आर्थिक समस्या रोकड़ की समस्या नहीं है। वह जीवनयापन और विकास की समस्या है। मनुष्य के सामाजिक व रागात्मक सम्बन्धों की समस्या है।

यह तो केवल प्रचलित व्यवस्था का ही दोष है कि मनुष्य की समूची भौतिक आवश्यकताएँ केवल पैसों में निहित हो गई हैं। आवश्यकताओं के साथ-साथ मनुष्य के समग्र सामाजिक सम्बन्ध, उसकी रागात्मक भावनाएँ, उसका कलात्मक सौन्दर्य बोध, उसका वैज्ञानिक विकास, उसका समस्त परम्परागत ज्ञान, उसकी सांस्कृतिक थाती और प्रकृति पर उसकी निरन्तर विजय—मतलब कि उसका सर्वस्व आज पैसों में समाहित हो गया है। आज मनुष्य के लिये मनुष्य की देह प्यारी नहीं, पैसा प्यारा है। चाम नहीं, दाम प्यारा है।

रोकड़ के भूत ने मनुष्य के शरीर से उसका कलेजा और दिल निकाल लिया है और तोंद के रूप में उसने पेट को इतना बड़ा दिया है कि जिसके फलस्वरूप आज पेट ने मनुष्य की समूची देह, उसके अस्तित्व, उसके मानस और उसकी समग्र चेतना को ही पचा डाला है।

मनुष्य की पाचन-शक्ति आज इतनी तीव्र, उग्र और हिंसक बन गई है कि वह उसके शरीर और मन ही को खाये जा रही है। पेट की आग मे मनुष्य के सारे रागात्मक सम्बन्ध, उसकी सुकोमल भावनाएँ जल कर नष्ट हुई जा रही हैं।

इस निर्जीव पैसे ने आज मनुष्य को भी ठीक अपने ही समान निर्जीव बना डाला है।

आज की व्यवस्था मे मनुष्य के अन्तर्जगत की सारी सुकोमल भावनाएँ—बाजार, प्रतियोगिता और रोकड की विभीषिका के कारण कुठित, विकृत एव नष्टप्राय हो रही हैं। आज पैसा केवल भौतिक वस्तुओ को खरीदने का ही साधन नही बल्कि मनुष्य की सुकोमल भावनाओ को और उसकी रागात्मक प्रवृत्तियो को भी खरीदने का साधन बन गया है। धान, तेल, नमक, मिर्च और लकडी के क्रय-विक्रय तक ही उसकी ताकत सीमित नही बल्कि उसकी पवित्र तुला पर प्रेम, वात्सल्य, स्नेह, ममता, मोह आदि सबकुछ खरीदा और बेचा जाता है।

नारी के जिस प्रेम, विरह और उसके सौदर्य को लेकर साहित्य मे कितना कुछ लिखा गया है और न जाने कितना कुछ लिखना शेष है, उस नारी का प्यार आज टके सेर हो गया है। केशव और बिहारी की नायिकाओ का आकर्षक शरीर आज नमक और हल्दी से भी सस्ता हो गया है। उनकी अनमोल चितवनें आज आना-पाइयो के वशीभूत हो गई हैं। कालिदास की शकुन्तला आज हर ऐरे-गैरे दुष्यत को, जिसकी मुट्ठी मे पैसा है, उसे अपना सुन्दर शरीर, अपना मन और अपना प्यार बेच रही है। सूरदास की भ्रमर-गोपिकाएँ आज मानव-देहधारी प्रत्येक गोपाल को अपना मक्खन-सा शरीर और दूध-सा पवित्र मन बेचने को विकल हैं जो उनके पास पैसा लेकर पहुँचता है। प्रेम-नायिकाओ की कमल सी आँखें, चकित हिरणी सी उनकी चितवनें, बिंबाफल से उनके गुलाबी होठ, रेशम की डोर से उनके पतले अधर, बासग के समान उनकी केश-राशि, धनुष के समान तनी हुई उनकी भृकुटियाँ, कमल-नाल सी उनकी पतली कमर, पीपल के पत्ते सा उनका सुकोमल पेट, देवल के थभो सी उनकी सुडौल जघाएँ, कमल के पत्ते सा उनका थिरकता मन, हसिनी के समान उनकी सुमधुर गति, मोरनी सी उनकी लम्बी ग्रीवा—जिन्हे पाने के लिये तपस्या और साधना करनी पडती थी—आज वे पैसे की दानवी क्रयशक्ति के कारण इतनी सहज और सस्ती हो गई हैं कि उनमे कोई प्रेम व आकर्षण शेष नही रहा। नारी की देह और उसका प्यार केवल शारीरिक आवश्यकता की वस्तु-मात्र बन कर रह गया—जिसकी चौडी छाती, पतली कमर, व भीनी पसलियो को पाने के लिये न शिव को पूजने की आवश्यकता है और न हिमालय जाकर गलने की और न तपस्या करने की

उर चवडी, कड पातळी, भीणी पासळियाह।
कं मिळमी हर पूजिया, कं हेमाळे गळियाह॥

केवल अटी म पैसा और पाने की इच्छा भर होनी चाहिये। न इसमे कुछ अधिक न इससे कुछ कम। आज नारी जैसी सहज प्राप्य वस्तु के लिये ताप, तलवार, युद्ध और खून बहाने की रत्ती भर आवश्यकता नही। पैसे मे खून, तलवार और युद्ध से अधिक ताकत है।

मेघदूत में वर्णित अलका नगरी की सुन्दर यक्ष-कुमारियाँ जिन्हें पाने की देवता भी अभिलाषा करते थे, उन्हें आज पैसे की अमोघ शक्ति के बूते पर सहज ही हथियाया जा सकता है। केवल अंटी में पैसा और पाने की साधारण इच्छा भर होनी चाहिये। न इससे कुछ अधिक न इससे कुछ कम।

अलका नगरी की उन सुन्दर यक्ष-कुमारियों के प्रेमातुर हृदय में भी इतनी उत्कट लज्जा की गहनतम भावना अंतर्निहित थी कि अपने अभिन्नतम प्रेमी के सम्मुख भी उन्हें क्रीडा के समय रत्न-प्रदीप का प्रकाश भी सह्य नहीं होता था। मुट्ठी भर कुंकुम फेंक कर उनका संकोचशील मन उन्हें बुझाने की चेष्टा करता था :

> नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
> क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
> अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपा-
> न्ह्रीमूढाना भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः। —उत्तर मेघ ७

[ वहाँ कामातुर प्रेमी लोग जब [ अविनीत होकर ] अपने चपल हाथों से बिम्बाफल के समान ललित अधरों वाली अपनी प्रियाओं की वसन-ग्रंथियाँ ढीली करते हैं, और प्रेमोद्वेग से दुकूल को दूर कर देते हैं तो उत्कट लज्जा से विमूढ़ वे रमणियाँ [ प्रकोष्ठ का प्रकाश बुझाने के हेतु से ] उज्ज्वल जगमगाते हुए रत्नदीप की ओर मुट्ठी भर कर कुंकुम चूर्ण फेंकती हैं। किन्तु प्रदीप की तरह जगमगाता हुआ रत्न बुझता नहीं है और उन सुन्दर यक्ष-वनिताओं की चेष्टा अकारथ ही जाती है। ]

अलका नगरी के उन रत्नप्रदीपों की भाँति इस रोकड़-नगरी में सोने और चाँदी के निर्धूम अक्षय प्रकाश को भी यदि आज की बेबस सुकुमारियाँ घृणा और आत्मग्लानि से दुखी होकर मुट्ठी भर रेत से बुझाने की चेष्टा करें तो इनकी चेष्टा भी अकारथ जायेगी। सोने के इस प्रकाश ने आज की विवश नारी को उसकी देह के अलावा उसके मन में भी अनावृत कर दिया है। और मनुष्य को क्षुद्र, निम्न स्वार्थी और क्रूर बना दिया है, जिससे फलस्वरूप मानवीय अंतर्जगत विषाक्त, हीन, विक्षिप्त और द्वेषी हो गया है। इस तरह के वातावरण में प्रेम, ममता एवं स्नेह आदि ललित भावनाएं पनप नहीं सकतीं। इन्सान और इन्सान के बीच शुद्ध मानवीय प्रेम, वस्तु और अर्थ के अटूट प्रलोभन के कारण अवरुद्ध हो गया है। उसकी सहज अभिव्यक्ति का स्रोत निरुद्ध हो गया है। तब आज की विवश मानवता सिनेमा के सस्ते, कलाविहीन और सौंदर्य-रहित मनोरंजन, कामोत्तेजक रंगीन उपन्यासों की उच्छृंखलता और तुच्छ कोटि की जासूसी व ऐयारी कहानियों की अविकसित जिज्ञासायुक्त अवास्तविकता में अपने को भुलाने और क्रूर यथार्थ से पलायन करने की निष्फल चेष्टा में उलझ गई है। इस अराजकतापूर्ण भौतिक विकास से त्रस्त, रागात्मक संबंधों से सर्वथा वंचित मानवता निर्दयी कामोत्तेजना, अमन्द कामोद्वेगों को ही प्रेम के नाम पर स्वीकार करके अपने को भ्रांति में रखने की अकारथ चेष्टा ही में मगन हो गई है। क्षुद्र और हीन वस्तु को प्रेम का सुसंस्कृत सुन्दर नाम देकर अपने को छल रही है। निस्सन्देह आज के मनुष्य का हृदय पारस्परिक प्यार

जैसी उदात्त भावनाओ मे शून्य और यान्त्रिक हो गया है। पैसो की खन-खन ही उसके विक्षिप्त मन का मधुरतम संगीत है। नारी के प्रति उसका बहु-प्रचारित प्यार वास्तव में क्षणिक कामुकता के सिवाय और कुछ भी नहीं। प्रेम की गहराई और तीव्रता के अभाव मे विरह की वेदना भी उसके हीन स्वार्थी मन को विचलित नही करती। आज की इस सकटकालीन स्थिति मे यक्ष, शकुन्तला, पद्मावती, ऊजळी, भ्रमर-गोपिकाओ, प्रेम-नायिकाओ के प्रेमोल्लास और उनकी विरह-व्यथा का महत्व तो और भी सहस्र गुना बढ जाता है। इन प्रेम-कथाओ का विरह-सत्ताप हमारे जीवन की कटुताओ को मधुर बनाता है। अर्थ-जाल मे फँसे हुए मनुष्य को मुक्ति का पाठ पढाता है। मानवीयता से वचित मानव को अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति का आभास प्रदान करता है। इसान की जिन्दगी से बिछुडी हुई इसानियत का पुन उससे साक्षात्कार करवाता है। इन प्रेम-कथाओ मे मनुष्य के अतरात की पवित्रतम थाती सचित है जो सदैव अक्षुण्ण बनी रहेगी।

आनन्दोत्थ नयनसलिल यत्र नान्यैर्निमित्तै -
र्नान्यस्ताप कुसुमशरजादिष्टसयोगसाध्यात।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति -
र्वित्तेशाना न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति॥—उत्तर मेघ ४

[ वहाँ अलका नगरी मे, हे मित्र! यक्षो की आँखो मे आनन्द के सिवाय कोई अन्य कारण से आँसू नही छलकते; अभिलषित सयोग से निवर्त्तनीय कामजनित ताप के अतिरिक्त वहाँ यक्षो को किसी अन्य ताप का अनुभव नही होता, वहाँ प्रेम के कलह के अतिरिक्त और किसी कारण से उन्हे विरह का सन्ताप नही भोगना पडता और वहाँ यौवन के सिवाय कोई अवस्था ही नही होती।] [ यौवन और आनन्द का अखण्ड साम्राज्य है वहाँ! ]

लेकिन आज! आज तो इससे बिलकुल विपरीत ही स्थिति है। आँखें निरन्तर आँसुओ से छलछलाई रहती हैं, लेकिन वे प्रेम और आनन्द के आँसू नही हैं। सिवाय प्रेम एव हर्ष के वे शेष सभी कुछ के प्रतीक है—भूख, दुःख, बीमारी आदि सभी व्यथाओ के सहज परिणाम। ताप, जलन, ज्वाला, सर्वत्र व्याप्त है पर वह मानवीय वियोग और विरह-व्यथा की परिचायक नही। मनुष्य और मनुष्य के बीच सवेदना नाम की तो कोई चीज ही नही रही। आज मनुष्य के सतापो की सीमा नही है। पर उनमे विरह, सहानुभूति का अश बहुत ही थोडा है। सन्ताप—केवल आर्थिक अभावो का सन्ताप। जवानी के साथ ही बुढापा आ धमकता है। आर्थिक परवशता यौवन को चारो ओर से जकड कर उसे पगु और कुठित बना देती है। बीमारी, जर्जरित-वृद्धावस्था और क्षोभ का आज निर्बन्ध साम्राज्य छाया हुआ है। प्यार और धन के पारस्परिक अन्तर्विरोध ने मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया है। आपसी मिलन और प्रेम असम्भव नही तो कम से कम दुरवार अवश्य हो गया है। आधुनिक व्यवस्था मनुष्य के जीवन, प्राण, मानसिक विकास प्रेम और त्याग के सौदे पर भौतिक वस्तुओ का उत्पादन बढा रही है। यह महगा सौदा है। मनुष्य के लिये मनुष्य का प्यार ही उसकी सर्वोपरि वस्तु है और प्यार का अभाव ही उसकी विकटतम निर्धनता और निर्धनता की

इस विभीषिका से बचते रहने के लिये इन प्रेम-कथाओं का प्रेम-तत्व मनुष्य को निरन्तर सावधान करता रहता है। जिन्दगी के संघर्ष मे उसे शक्ति प्रदान करता है। प्रेम-कथाओं मे वर्णित प्रेम की सुकोमलता मनुष्य को दुर्बलता की ओर नही, निश्चल दृढता की ओर अग्रसर करती है। विरह की गहनतम व्यथा श्रोता या पाठक के मन मे सुख और आनन्द का रूप धारण कर लेती है। ऐसा आनन्द कि जिसका उद्भव व्यथा से होता है। इन प्रेम-कथाओं का यह विरोधी तत्व मनुष्य के जीवन मे सगति और समन्वय की सृष्टि करता है। मानस का परिमार्जन करके उसे उदार और उदात्त बनाता है।

टोळी सू टळताह, हिरणा मन माठा हुवै,
वाल्हा विछडताह, जीणो किण विध जेठवा।

जब पशु-जगत मे भी आपसी विछोह उनके मन को खीचता है, हिरणो का मन अपनी टोली से दूर होते हुए जब दूर नही होना चाहता तब एक मनुष्य के लिये यह क्योंकर सम्भव हो कि अपने प्रियतम के विछुड़ने पर वह जिंदा रह सके।

नैणा नेह छिपाय, जिक किता दिन जेठवा।

नयनो मे नेह को छिपा कर बाह्य-जगत के सारे हृदय-वैभव को पाकर भी क्या हृदय की वेदना को शात किया जा सकता है ? मानव के अतराल मे सोये हुए मौन प्रेम का एक मात्र उत्तर है—नही। प्यार बदले मे केवल प्यार चाहता है। ममता का सीधा और न्यायपूर्ण लेन-देन ममता से है। भावना के बदले वस्तु का सौदा मानवीय दयनीयता का परिचायक है। भावनाओं के अनुपनीय ऐश्वर्य को किसी भी बहुमूल्य भौतिक वस्तु से खरीदा नही जा सकता। ऊजळी प्यार के बदले मे प्यार का यह अधिकार लेकर ही जेठवा के पास गई। लेकिन राजकुमार जेठवा प्यार के उस अधिकार का ठीक से मूल्याकन नही कर सका। साधारण मनुष्यों की सहज प्रक्रियाओं से राजकुमार की चेतना ऊपर होती है। राज-सत्ता प्यार के बल पर नही दड के बल पर सचालित होती है। सही है कि विचार और भावना क्रिया का मार्ग-दर्शन करते हैं फिर भी वह क्रिया है—जो चेतना को जन्म देती है। इसलिये राजकुमार जेठवा की चेतना दरबारी मान्यताओं, राजसत्ता की प्रशासनिक क्रियाओं का ही परिणाम था। राजा के दिल मे क्रूरता के स्थान पर प्रेम का प्रादुर्भाव हो जाय तो राज्य का सचालन नही हो सकता। समस्त मानवीय गुणों का अभाव ही राजा का एकमात्र गुण होता है। इसान जब पूर्णतया मर जाता है तभी उस भौतिक देह के भीतर राजा का जन्म होता है। लेकिन ऊजळी की नारी देह के भीतर मानवीय भावनाएं अकृत्रिम रूप से विद्यमान थी। उसका प्यार बदले मे प्यार चाहता था सौदा नही। किन्तु इसके विपरीत राजकुमार जेठवा को प्यार के बदले मे राज्य का सौदा इतना महगा पड़ता था कि जिसकी कल्पना भी उसे मान्य नहीं थी। राजमहल के सामने विलाप करती हुई ऊजळी का विश्वास और उसकी आशा ध्वस्त हो गई तो उसने अपने प्रेमी राजकुमार को उलाहना देते हुए कहा—

आख्यां आशा करे निरखण ऐने तो वाढिये,
नर सूठ ढुकारे, भोळप भाभी भोग्न्दा।

[जो आशा-भरे हृदय से आता है उसे निराश होकर लौटना शोभा नहीं देता। हे भाग्य जेठवा के पुत्र, तुम्हारी ऐसी तुच्छता से मुझे लज्जा आती है।]

लेकिन जिन राजमहलो की गर्वोन्नत उच्चता के सम्मुख जेठवा के विश्वासघाती प्रेम को ऊजळी जितना तुच्छ करके मान रही थी, वह तुच्छता ही तो जेठवा की दृष्टि मे सर्वोच्च मान्यता थी, जिसने उसके प्रेम को नियन्त्रित कर रखा था। उसने ऊजळी को बार-बार यही समझाने की चेष्टा की कि वह प्रेम की भूख को सदा के लिये बिसार दे। यह नितान्त बावलापन है। पेट की भूख—हाँ यही तो दुनिया मे एकमात्र सच्चाई है। इस सच्चाई की ज्वाला से वह जब कभी संतप्त हो, निसकोच घूमली नगर चली आये। राजकुमार जेठवा उसकी सभी भौतिक आवश्यकताओ को पूरा करने का वचन देता है। प्रेम का कौल न भी पूरा हुआ तो कोई बात नही। उस कौल के बदले मे यदि गरीब ऊजळी को ये सुविधाएँ हासिल हो जाती है तो वह लाभ ही मे रहेगी।

कण ने दाणा कोय, भण्य तो दऊं गाडा भरी,
हैये भूलू होय, तो आभपरे आवे ऊजळी।

यदि ऊजळी कहे तो जेठवा उसे अनाज की गाडियाँ भर कर दे सकता है। और भविष्य मे भी वह जब कभी भूखी हो तो वह निसकोच यहाँ आकर धान ले जा सकती है। आखिर जेठवा ने उसके साथ प्यार जो किया है। उसके साथ कई दिनो तक प्रणय-क्रीडाएं जो की हैं। वह इतना कृतघ्न नही कि उन प्रणय-क्रियाओ को भूल जाये। ऊजळी, यदि वह चाहे तो उसे खजाने से धन मिल सकता है। जमीन-जायदाद मिल सकती है। ऊजळी भी आखिर कोई नादान बालिका तो है नही। अपना नफा-नुकसान सोचने की उसकी भरपूर उम्र हो गई है।

अन्त मे एक नेक व कीमती सलाह जेठवा ने ऊजळी को और भी दी—

आथा थी जाने ऊजळी, नवे नगर कर नेह,
जाने रावळ जामने, छोगाळो न दे छेह।

यदि ऊजळी को अनाज नही चाहिये और केवल राजा से ही विवाह करने को वह आतुर हो तो वह सुखपूर्वक नवानगर के राजा रावळराम से अपना प्रेम प्रगट करे। वह रसिक राजा ऊजळी को धोखा नही देगा। ऊजळी की साध अवश्य पूरी होगी।

एक प्रेमी राजकुमार अपनी प्रेमिका को इससे बढिया और क्या नेक सलाह दे सकता है? लेकिन बावळी ऊजळी ने इन नेक सलाहो पर बिल्कुल गौर नही किया। उसका प्रेमी मन तो प्यार के बदले मे केवल प्यार चाहता था। न अनाज से भरी गाडियों की उसे चाह थी और न राजा रावळराम से विवाह करने की तमना। वह तो जिससे प्रेम करती थी उसी से शादी करना चाहती थी। उसी के साथ एक आर्थिक व सामाजिक इकाई मे बँधना चाहती थी। उसकी दृष्टि प्रेम और विवाह को विच्छिन्न करके देख ही नही सकती थी।

आज भी हर ऊजळी के सम्मुख धान की भरी गाडियाँ और राजा रावळराम से विवाह करने का प्रलोभन कदम-कदम पर अपने विभिन्न रूपो म प्रगट होता है और मन मार कर

अपने ही हाथो अपने प्यार का गला घोट कर अनाज से भरी गाडियो व राजा रावळराम को स्वीकार करना पड़ता है। पेट की भूख सभी ललित भावनाओ और उदात्त विचारो को पचा कर नष्टप्राय कर डालती है।

करीब-करीब सभी प्रेम-कथाओ मे विश्वासघात, निष्ठुरता, कृतघ्नता आदि के हीन प्रसग विद्यमान रहते हैं, लेकिन श्रोता और पाठकों पर इनका प्रभाव सर्वथा उलटा ही पड़ता है। प्राकृतिक दुर्बलताओ की स्पष्ट अभिव्यक्ति विरोधी दिशा मे अपना प्रभाव दर्शाती है। वह हमे दुर्बलताओ के प्रति जागरूक व सजग बनाती है। स्वय कथा को भी इस तरह के निष्ठुर प्रसग दृढ और प्रभावशाली बनाते हैं। उन हीन चित्रणों से ही हीन भावनाओ का उन्मूलन होता है। प्रेम-कथाओ के द्वन्द्वात्मक चरित्र की यह अपनी विशेषता है।

नारी की देह पाकर भी ऊजळी केवल नारी मात्र नही है। वह एक प्रेमिका है—विशुद्ध प्रेमिका! नारी देह की तृप्ति के लिये दुनिया मनुष्यो से भरी पडी है। पर इन अगणित मनुष्यो की भीड-भाड मे उसका प्रेमी तो केवल एक ही है। उसके मन का प्रेमी ही उसके शरीर का उपयोग कर सकता है।

आवै और अनेक, ज्यां पर मन जावै नहीं,
दीसै तो बिन देख, जागा सूनी जेठवा।

अपने प्रेमी के अभाव मे ऊजळी को सर्वत्र इस मनुष्य-जगत मे सूना-ही-सूना दिखलाई पड़ने लगा। केवल पशु और पक्षी जगत मे उसे आदर्श दिखलाई दिये। केवल उनका प्रेम ही प्रेम की प्रदीप्त लौ को प्रज्वलित रखेगा—

सारस मरता जोय, सारसणी मरसी सही,
लाखीणी आ लोय, जग मे रहसी जेठवा।

यह कैसी विडम्बना है कि पशु-पक्षियो का प्रेम मनुष्य के लिये आदर्श की वस्तु बन गया। मनुष्य को प्रेम की मिसाल के लिये पशु-जगत की ओर दयनीय दृष्टि से निहारना पड रहा है। मनुष्य का अन्तर्जगत इतना निर्धन कैसे हो गया? सारस को मरते देख कर निश्चित रूप से सारसणी मरेगी। जब उसके जीवन का एक मात्र आधार ही मिट गया तो वह कैसे जीवित रह सकेगी। दुनिया का कोई भी भौतिक ऐश्वर्य प्रेम की मनमोहन लौ को बुझा नहीं सकता।

जग मे जोडी दोय, सारस नै चकवा तणी,
तीजो मिळी न कोय, जो-जो हारी जेठवा।

मनुष्य के इतने लम्बे-चौड़े ससार को छान मारा, कहीं भी दो प्रेमियो की अमिट जोड़ी दिखाई न दी। दुनिया युगों से प्रेम की दो युगल जोड़ियों की साक्षी रही है—एक सारस और दूसरा चकवा। ऊजळी को सतप्त आँखें भी निहार-निहार कर हार गई पर उसे तीसरी जोड़ी दिखाई न दी—क्योंकि पार्थिव परवशता और सामाजिक बन्धनों ने उसके मिलन व उसकी दाम्पत्य भावना को खण्डित कर दिया था, इस कारण सर्वत्र विलगाव और विभेद दृष्टिगोचर होना ही उसके लिये स्वाभाविक था।

यहाँ यह निर्देश करना भी असंगत न होगा कि चकवा, सारस, चातक और हिरण आदि ये काव्य-प्रतीक केवल मानव-हृदय की गहनतम अनुभूतियो को व्यंजित करने के संकेत मात्र हैं। मानवीय जगत पर पशु-जगत की श्रेष्ठता को स्थापित करने की खातिर इन विचित्र उदाहरणो की पुष्टि के द्वारा किसी भी तरह की प्रामाणिकता सिद्ध करना इन काव्य-प्रतीको की कभी मशा नही रही। पशु-पक्षियो और मनुष्यो की यह पारस्परिक तुलना पशु-जगत की मानवीय जगत से श्रेष्ठता की बोधक नही है। अपनी वैयक्तिक प्यार-भावना के अभाव को तीव्र और गहन रूप देने के लिये ये काव्य-प्रतीक केवल निमित्त मात्र हैं और जीव-शास्त्र के अनुसार परख करने पर तो यह बात बिलकुल साफ हो जाती है कि प्रेम और ममता के क्षेत्र मे मनुष्य पशु से सदैव श्रेष्ठ रहा और श्रेष्ठ है भी। पशुओं मे कुछ उदाहरण ऐसे मिल सकते है जिनसे नर और मादा के पारस्परिक लगाव व आकर्षण की गहनता प्रगट होती है। परन्तु फिर भी उस गहनतम आकर्षण के लिये पशुओ को इसके लिये श्रेय नही दिया जा सकता। क्योंकि उनका वह सहज लगाव केवल प्रकृतिगत एक जन्मजात प्रक्रिया है, सजग चेतना का परिणाम नही। इसके विपरीत मनुष्य की प्यार-भावना उसकी अपनी सृष्टि है, प्रकृति की अचेतन प्रक्रिया मात्र नही।

क्योंकि सामाजिक सम्बन्धो के सभी सावेगिक तत्व—प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, ममता, स्नेह, वात्सल्य मोह आदि मनुष्य की अपनी सृष्टि है—इसलिये मनुष्य के विकास के साथ इन समस्त रागात्मक सम्बन्धो मे भी विकास और परिवर्तन होता रहा है। इनका स्वरूप कभी एक सा नहीं रहता। सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियो के बदलने के साथ ये तमाम सावेगिक तत्व भी बदले और विकसित हुए हैं। व्यक्ति के सावेगिक तत्व और सामाजिक सम्बन्धो के सघर्ष से ही उसका अन्तर्जगत निर्मित होता है और यह निरन्तर सघर्ष ही समाज के विकास की अन्तहीन कहानी है।

समाज के विकास की इस अन्तहीन कहानी मे प्रेम कोई स्वतन्त्र या जुदा वस्तु नहीं है। इसलिये उसकी भौतिक और मूर्त सत्ता है। उसे कोई अमूर्त्त या नैसर्गिक वस्तु मानना वास्तविकता को अस्वीकार करना है।

साधारणतया सभी प्रकार के प्रीति-सूत्र, सावेगिक या रागात्मक सम्बन्धो को प्रेम की सज्ञा दी जाती है। इस प्रचलित भ्रांति का स्पष्ट करने के लिये केवल इतना ही समझना आवश्यक है कि शब्द—किसी भी विचार भावना व मूर्त्त-अमूर्त्त यथार्थ के प्रतिबिम्ब या बोधक नही होते। केवल सकेत मात्र होते हैं—अपूर्ण सकेत। भाषा के इस प्रकृत दुर्बल पहलू को ठीक से समझने पर शब्द के वास्तविक स्वरूप का स्पष्टीकरण हो जाता है।

एक ओर तो भाषा की यह प्रकृत निर्बलता और दूसरी ओर हमारे आर्त मन का समान मध्यवर्ती स्नायु-केन्द्र। समस्या और भी विकट हो जाती है। व्यक्ति और विभिन्न तत्वो का पारस्परिक सम्बन्ध मूल अतस प्रवृत्ति की बाह्य व्यजना को विभिन्न रूप प्रदान कर देता है। लेकिन भाषा की निर्बलता के कारण उन सभी विभिन्न स्वरूपो को विभिन्न शब्दो से सम्बोधित करना सम्भव नहीं होता। इसीलिये विचारो और भावनाओं के प्रति भ्रान्ति की उत्पत्ति

स्वाभाविक हो जाती है। सभी प्रकार के प्रीति-सम्बन्धों के बारे में यह बात तो निश्चित ही है कि प्रीत के लिये किसी न किसी आलंबन का होना अनिवार्य है। प्रेम अकेले नहीं होता, वह अन्य व्यक्ति के माध्यम से अपनी प्राण-प्रतिष्ठा ग्रहण करता है। आलंबन की भिन्नता के साथ-साथ स्थान, समय, स्थिति की भिन्नता के फलस्वरूप एक व्यक्ति के विभिन्न व्यक्तियों के साथ अनेकों रागात्मक सम्बन्ध होते हैं। मूल अंतस-प्रवृत्ति एक होने पर भी आलंबन के बदलने पर पारस्परिक सम्बन्ध-विशेष में भी तब्दीली आ जाती है। संपर्क की विभिन्नता से ही गुण [ Quality ] का निर्माण होता है। यदि इकाइयां भिन्न हैं तो गुण कैसे समान हो सकता है? संपर्क के संयोग की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप संपर्क की वियोगावस्थाएं भी विभिन्न होती हैं। और वियोग की अनुभूतियां भी संपर्क-विशेष के कारण अनेकों प्रकार की होती हैं। लेकिन शब्दों की मर्यादा अपने सीमित दायरे में ही इन विभिन्नताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। न तो शब्द स्वयं यथार्थ है और न वह यथार्थ का निश्चित बोधक ही। वह तो यथार्थ को समझने की एक मानव-निर्मित अभिज्ञता है।

यथार्थ को समझने की यह मानवीय अभिज्ञता विकास के दौरान में सदा बदलती रहती है। इस कारण यथार्थ के साथ मनुष्य का सम्बन्ध कभी एक-सा नहीं रहता, वह भी सदा बदलता रहता है। इस निरंतर क्रम में जो शब्द परम्परागत प्रचलन के कारण स्थिर जड़ता का निश्चित रूप धारण कर लेते हैं वे यथार्थ के प्रति अपनी अभिज्ञता की शक्ति को खो बैठते हैं। विकास में सहायक होने के बनिस्पत, वे उसके बाधक हो जाते हैं। विकास में बाधा उपस्थित करने वाले शब्दों को मनुष्य छोड़ता रहता है। और जो शब्द अपने बाह्य आकार के स्थिर रूप को बना रख कर भी अपने में सन्निहित व्यंजना को बदलते रहने की गतिशीलता कायम रखते हैं, केवल उनमें ही मनुष्य की निरंतर बदलती हुई भावनाओं को व्यक्त करने की क्षमता शेष रहती है। इसलिये शब्दों के प्रति हमारी धारणा निश्चित और रूढ़िबद्ध नहीं होनी चाहिये। क्योंकि यथार्थ की नई जानकारी और अंतस-प्रवृत्तियों की विकसित अभिज्ञता का पारस्परिक सम्बन्ध, शब्द में नूतन सांकेतिक तत्वों को प्रवहमान करता रहता है।

इसलिये स्पष्ट है कि भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति प्राप्त करने वाला प्रेम-तत्व भी कभी एकसा नहीं रहा। वह भी सदा बदलता रहा है। प्रेम—विश्व और जीवन का संचालन नहीं करता, बल्कि विश्व और जीवन के द्वारा ही प्रेम का संचालन होता है। परिवर्तित जीवन के हाथों अपना अस्तित्व ग्रहण करने के फलस्वरूप प्रेम में भी परिवर्तन होता रहता है। जीवन और प्रेम का यह विकसित क्रम द्वैत नहीं अद्वैत है।

केवल शब्द और भाषा ही नहीं, उनके द्वारा अभिव्यक्त होने वाले हमारे परम्परागत प्रेम-काव्य भी, जो निश्चित रूप में एक काव्यात्मक रूप [ Form ] ग्रहण कर चुके हैं, समय के साथ उनके तात्विक विषय में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाता है। परिवर्तन कोई स्वयं प्रेम-काव्य में नहीं बल्कि शब्दों की सांकेतिक शक्ति के परिवर्तन-स्वरूप एवं वस्तुगत और अन्तर्गत की नई अभिज्ञता के कारण नई पीढ़ी द्वारा उन प्रेम-काव्यों को समझने की अनुभूति में परिवर्तन! समय के हिसाब से प्राचीन होते हुए भी भाव ग्रहण करने वाली अनुभूतियाँ

मे नवीनता की वजह से ये प्रेम-काव्य उसी निर्धारित शैली मे अपना नया रूप ग्रहण करते रहते है। प्रेम-कथाओ के द्वन्द्वात्मक चरित्र की यह अपनी दूसरी विशेषता है।

यह स्वीकार कर लेने के पश्चात् कि शब्द यथार्थ के बोधक नही होते, यह तथ्य भी पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है—वास्तविक प्रेम और प्रेम की काव्याभिव्यक्तियो मे परस्पर क्या सम्बन्ध है। मनुष्य-जीवन मे जो भाषा और शब्द की सार्थकता है, प्रेमियो के जीवन मे इन प्रेम-काव्यो की भी ठीक वही सार्थकता है। मनुष्य और भाषा का जो पारस्परिक सम्बन्ध है ठीक वैसा ही प्रेमी के साथ इन प्रेम-कथाओं का सम्बन्ध है। मनुष्य द्वारा निर्मित की जाने पर भी भाषा मनुष्य को पुन प्रभावित करती रहती है, उसे सशक्त और विकसित करती रहती है, उसी प्रकार ये प्रेम-काव्य भी प्रेमियो को अपने अस्तित्व से प्रभावित करते है। प्रभाव की इस क्रिया-प्रक्रिया मे निरन्तर दुतरफा विकास होता रहता है। जिस प्रकार भाषा एक बार अस्तित्व मे आने पर एक स्वतन्त्र भौतिक शक्ति का रूप धारण कर लेती है और विकास के अपने स्वतन्त्र नियमो द्वारा अनजाने अनुशासित होती रहती है, उसी प्रकार ये प्रेम-कथाएँ भी स्वतन्त्र रूप से एक भौतिक शक्ति का काम करती हैं। स्वयं अपने द्वन्द्वात्मक रूप से इनका विकास होता रहता है जिसमे परिवर्तन और परम्परा दोनों का समान रूप से दखल रहता है। ये प्रेम-कथाएँ विशिष्ट शैली मे विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ हैं। जिस प्रकार शब्द स्वय यथार्थ नही होता, उसी प्रकार शब्दो के माध्यम से अपना जीवन ग्रहण करने वाली इन प्रेम-कथाओ मे भी ग्रतस प्रवृत्तियो की प्रेम-भावना का वास्तविक चित्रण नही है। ये प्रेम-कथाएँ, प्रेम की प्रतीक नही, बल्कि प्रेम-भावना की अभिज्ञता के काव्यात्मक सकेत चिन्ह हैं, जिनका स्वतन्त्र रूप से कलात्मक विकास होता रहता है। सामाजिक विकास और मनुष्य-जीवन मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने पर भी यह कहना कि ये प्रेमाभिव्यक्तियाँ वास्तविक प्रेम का हू-बहू चित्रण या सहज प्रतिबिंब मात्र हैं, सर्वथा अवैज्ञानिक और भ्रान्तिमूलक है। ये प्रेम-काव्य एक ओर तो प्रेमी को अपनी अनुभूतियो का माध्यम प्रस्तुत करती हैं और दूसरी ओर उसके मन मे नई अनुभूतियो का सचरण भी करती हैं, जिससे नये काव्यो की सृष्टि का आधार जुडता है। समय और समाज के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध होते हुए भी इन प्रेम-काव्यो का अपना स्वतन्त्र इतिहास है।

प्रेम—एक अत्यन्त सश्लिष्ट क्रिया है। भाषा के बिना जिस प्रकार मनुष्य के अन्य सभी भौतिक या मानसिक विकास सम्भव नही थे उसी प्रकार यदि भाषा नही होती तो प्रेम भी सम्भव नही होता। क्योकि प्रेम मनुष्य की स्वय अपनी सृष्टि है जिसको उसने अपने सामाजिक जीवन मे विकसित किया है। पशुओ की भाँति भाषा के बिना मनुष्यो मे भी प्राकृतिक मैथुन और उससे जुडा हुआ जन्मजात अचेतन लगाव निस्सन्देह रूप से उसकी भौतिक देह मे मौजूद रहता, किन्तु मैथुन और प्रेम दोनों एक बात नहीं है। यह सही है कि प्रेम से कामासक्ति रहती है पर इसके विपरीत यह कदापि सही नहीं है कि कामासक्ति मे भी प्रेम हो। काम प्रवृत्ति से उत्पन्न होने पर भी प्रेम काम-भावना से सर्वथा एक भिन्न वस्तु है। केवल भिन्न ही नहीं अन्तर्विरोधी भी। गुलाब का पौधा जमीन से पैदा होने पर भी तासीर गुणो की समानता के बावजूद भी मिट्टी नही है। वह मिट्टी से सर्वथा भिन्न वस्तु है। अन्तर्विरोधी

भी। मिट्टी में गन्ध है तो उसमें भीनी सुगन्ध। मिट्टी शुष्क है तो वह फूल अत्यन्त सुकोमल। मिट्टी मैली और कुरूप है तो गुलाब का फूल गुलाबी, हरा और सुन्दर है।

प्रेम—मैथुन का सहज परिणाम नहीं है। उसमें तो प्रेम के बनिस्बत हिंसा व क्रूरता का सन्निवेश है। भूख के समान काम भी सौंदर्यरहित, क्रूर और अनियन्त्रित है। सम्भोग के समय काटना, दबोचना और पशुवत हो जाना, यही काम का अपना स्वभाव है। कामासक्ति में केवल मैथुन की ही एकमात्र अपेक्षा रहती है और क्रिया के पश्चात् भी प्रेम उत्पन्न नहीं होता, बल्कि अरुचि, ग्लानि जैसी हीन भावनाएँ पैदा होती हैं। प्रेम में कामासक्ति की मूल प्रेरणा होते हुए भी उसका अपना स्वरूप और अपना अस्तित्व है।

प्रेम का मूल आधार है—सम्पर्क। निरन्तर साहचर्य, जो नारी में उसकी देह के अलावा लालित्य, गुण, सौन्दर्य और स्वभाव की भी अपेक्षा रखता है। सम्पर्क के बीच उत्पन्न हुए प्रेम को माया, कला, काव्य, और सौन्दर्य-बोध की भावना—उच्चता, दृढ़ता, मर्मज्ञता और सुकोमलता प्रदान करती है। काम-प्रवृत्ति मनुष्य को स्वार्थी, हीन, संकीर्ण, तुच्छ और पशुवत् बनाती है। प्रेम मनुष्य को त्याग, उदारता और बन्धुत्व का पाठ पढ़ाता है। त्याग ही प्रेम की कसौटी है। जो प्रेम जितना अधिक गहरा होता है, उसमें त्याग की भावना भी उतनी गहरी और निर्बन्ध होती है। प्रेम—मनुष्य को मनुष्य बनाता है और उसे ऊपर उठाता है। और काम-प्रवृत्ति मनुष्य को हमेशा पाशविक धरातल पर ही खड़ा रखती है। काम-प्रवृत्ति तो मूल रूप में सदैव अपने उसी आदि रूप में मौजूद रहती है। पर मनुष्य के काम-सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप अपना रूप परिवर्तित करते रहते हैं। प्रेम का सम्बन्ध काम-प्रवृत्ति से इतना नहीं जितना समाज में प्रचलित काम-सम्बन्धों से है। समाज के काम-सम्बन्ध तात्कालिक समाज की प्रेम-भावना को जाने-अनजाने अवश्य प्रभावित करते हैं। क्योंकि इन सम्बन्धों में परम्परा, नैतिक मान्यता, नियन्त्रण और संस्कार निहित रहता है। मनुष्य में मूल अन्तस-प्रवृत्तियों का आदिम स्वरूप तो अधिकांशतया वही रहता है पर उनकी बाह्य व्यंजना का समाज के द्वारा संस्कार होता है।

ऊजळी के नारी-हृदय की प्रेम-भावना या उसकी विरह-वेदना केवल पुरुष देह की ही कामना नहीं करती बल्कि उसकी वेदना में काम की भूख के बजाय प्रेम की तृष्णा अधिक है। उसका यौवन काम को अस्वीकार नहीं करता बल्कि स्पष्ट शब्दों में उसकी चाहना भी करता है, परन्तु उसकी वह चाहना केवल प्रेमी के द्वारा ही सम्पन्न होना चाहती है। ऊजळी के यौन-प्रेम की खातिर निरा पुरुष होना ही काफी नहीं है—प्रेमी होना उसकी पहली शर्त है। उसका नारी-हृदय जेठवा के अन्यथा किसी भी को पुरुष-रूप में स्वीकार नहीं करना चाहता—

> जोबन पूरे जोर, मालीगर मिळियो नहीं,
> सारै जग में सोर, ओगण होसी जेठवा।

यहाँ एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है। वह यह कि ऊजळी की इस विरह-व्यथा, उसकी विरक्ति और उसके त्याग में प्रेम का दखल अधिक है या तात्कालिक अवस्था की सामाजिक परवशता। उसका प्रेम-प्रदर्शन उसके स्वतन्त्र मन की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति

है या रूढिवद्ध मान्यताओं मे जकडे हुए उसके नारी-हृदय का मूक रोदन। जिन धर्म-शास्त्रो ने सदियों से डके की चोट—न स्त्री-स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति', 'अस्वतन्त्रता स्त्री पुरुष प्रधाना' और 'अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री' का निरंतर प्रतिपादन किया है, क्या उसीकी अचेतन स्वीकृति ऊजळी की चेतना मे मुखर तो नही हो उठी ? क्या धर्म-शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सामाजिक परवशता ही को ऊजळी ने अपनी एक मात्र स्वतन्त्रता नही मान लिया ? यह ऊजळी के स्वच्छन्द मन की निर्बन्ध आत्माभिव्यक्ति है या शास्त्रकारो द्वारा प्रताडित नारी पर निरतर विजय का निर्भीक उद्घोष ?

इस प्रश्न का उचित समाधान पुरुष-प्रधान समाज मे आज दिन भी नही हो पाया है। नारी की आर्थिक परवशता और उसकी स्वतन्त्रता को विच्छिन्न करके देखना असभव नही तो मुश्किल अवश्य है। आर्थिक रूप से पूर्णतया स्वतत्र हुए बिना नारी अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त नही कर सकती, यह निर्विवाद रूप से सही है। और इसके साथ-साथ यह भी असदिग्ध रूप से सत्य है कि आर्थिक बन्धनो से सर्वथा मुक्ति पा जाने के बाद भी दाम्पत्य जीवन का एकमात्र सूत्र प्रेम ही का रहेगा। तब भी विवाह के लिये प्रेम के सिवाय और कोई आधार मान्य नही होगा।

नारी के शोषित जीवन के साथ उसका प्रेम भी तभी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा जब वह घर की चहार-दीवारी को लांघ कर समाज के मुक्त आंगन मे प्रवेश करेगी। उसके समस्त कार्यो को, पारिवारिक उपयोगिता के सकीर्ण हीन महत्व से ऊपर उठा कर जब उन्हे सामाजिक उपयोगिता का सर्वोपरि महत्व प्राप्त होगा, तभी उसका चिर-बन्दी जीवन वास्तविक मुक्ति का अनुभव करेगा।

इस मुक्ति के लिये नारी को पुरुष का अनुकरण करने की आवश्यकता नही होगी। समानता—कार्यों की समानता न होकर आर्थिक व सामाजिक समानता होगी, तब महत्व कार्यो के बँटवारे का इतना न रह कर उनकी सामाजिक मान्यता का अधिक रहेगा। नारी जब अपनी उस स्वतन्त्र स्थिति को प्राप्त कर लेगी तब एकनिष्ठता का दावा पुरुष के हिस्से मे भी उसी अनुपात से आयेगा जितना नारी के लिये है। दाम्पत्य जीवन मे बँधने की सामाजिक इकाई के लिये किसी भी बाह्य शक्ति का दखल न होकर केवल अतर्मन के प्रेम का दावा ही मान्य और नैतिक समझा जायेगा। केवल प्रेम ही के बल पर तब ऊजळी अपने प्रेमी जेठवा को सहज ही प्राप्त कर सकेगी। समाज की कोई भी बाहरी ताकत उसके प्रेम-पथ मे बाधा बन कर खडी नहीं होगी। प्रेमी के वियोग मे तब किसी को चदन-माला हाथ में लेकर जोगन बनने की आवश्यकता नही होगी। सती बन कर जलने की कल्पना भी तब सम्भव नही होगी। प्रेम की नैतिकता ही विवाह की नैतिकता का एकमात्र प्रमाण होगी।

दुनिया के सभी धर्म-शास्त्रो में नारी के विश्वासघाती चरित्र को लेकर जितनी भी शास्त्र-सम्मत उक्तियाँ प्रचारित की गई हैं वे नारी-चरित्र की वास्तविकता न होकर पुरुष के अपने ही स्वभाव की हीन और विकृत मनोदशा का प्रतिबिंब है। नारी पुरुष से अधिक से अधिक स्वभाव मे एकनिष्ठ होती है। वह शास्त्रो के बल पर अगीकार किये हुए पति के साथ विश्वास-घात कर सकती है, किन्तु अपने मन से वरण किये प्रेमी के साथ कभी धोखा नही कर सकती।

कोमल कोठारी

## ऊजली के प्रेम का काव्य-रूप

जेठवे के सोरठो का प्रतिपाद्य विषय प्रेम है। प्रेम मनुष्य के लिए अत्यन्त सहजतम अनुभूति है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण मे प्रेम की अमूर्त सत्ता प्रवहमान रहती है। प्रेम के व्यावहारिक और विस्तारमय रूप मे ही सामाजिक व्यक्ति के पारस्परिक मानवीय सम्बन्ध बनते हैं और एक-दूसरे के प्रति सरल सहानुभूति का भाव बना रहता है।

प्रेम के अनेक रूप होते हैं। 'प्रेम' शब्द मनुष्य की एक विशिष्ट भावना का प्रतीक है। 'प्रेम' उस सहज आकर्षण का सुमन है जो निरन्तर सम्पर्क और जीवन के संघर्षमय क्षणों मे पालन-पोषण पाकर समार को सौरभ और सौन्दर्य प्रदान करता है। यह सहज आकर्षण हमे उन सब वस्तुओ या व्यक्तियों या भावनाओ के प्रति होता है जो हमारे जीवन को जीने योग्य बनाते हैं। जिस प्रकार जल विभिन्न रगो के पात्रो मे जाकर, उसी पात्र का रग ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार प्रेम भी पात्र या वस्तु या भावना के अनुकूल ही बन जाता है। माता का पुत्र के प्रति प्रेम, भाई का बहिन के प्रति प्रेम, प्रियतमा का प्रियतम के प्रति प्रेम—यह पारिवारिक सम्बन्धो के प्रेम के विभिन्न रूप हैं। इसी प्रकार सामाजिक जिम्मेदारी, देश की आवश्यकता, प्रकृति के सौंदर्य और संस्कृति के वैभव आदि के प्रति भी प्रेम का भाव होता है। समय एव परिस्थिति के अनुकूल प्रेम की व्यंजना हो जाती है। किन्तु जब तक यह प्रेमाभिव्यंजना साधारण दैनन्दिन जीवन की घटनाओ तक ही सीमित रहती है तब तक उसे पहिचानना सहज नही होता। जिस प्रकार हमे अपना श्वास नही सुनाई देता उसी प्रकार प्रेम की यह व्यंजना भी अनुभव नही होती। किन्तु जब प्रेम मे तीव्रता आती है, उत्कटता आती है, गहराई आती है तो प्रेम का शक्तिशाली अस्तित्व हमे अपनी सहजता की नींद से जगा कर एक बृहत्तर और महान भावना के निकट छोड़ देता है। हम प्रेम की महत्ता को तभी समझते हैं और उसके गहरे लाल रंग मे सराबोर होकर स्वय को धन्य समझते हैं। प्रेम के इन्ही रागात्मक रूपों को लेकर साहित्य की महान् कृतियों का जन्म हुआ है। चाहे वह वेद-व्यास का

महाभारत हो, बाल्मीकि की रामायण हो या कालिदास के नाटक हो। सभी कलात्मक कृतियो मे प्रेम के सूक्ष्मतम रूपो के वैविध्य का सकेत होता है।

मनुष्य के लिए या मनुष्य मे प्रेम एक मूल वृत्ति है। इसलिए मनुष्य के विकास के साथ इस मूल वृत्ति ने भी सामाजिक जीवन के ऊहापोह मे विकास, गहराई और विस्तार प्राप्त किया है। फिर भी समय के क्रम मे, इतिहास के दौर मे, पारिवारिक, सामाजिक और प्राकृतिक सम्बन्धो के बीच मे प्रेम एक अमूर्त (साहित्य के अर्थ मे, दर्शन के अर्थ मे नही) सत्ता के रूप मे मौजूद रहा है। साहित्य मे इस मूल वृत्ति के रागात्मक और समाज-सापेक्ष रूप को बहुत अधिक महत्व मिला है।

प्रेम एक अमूर्त भावनात्मक सत्ता है। इस अमूर्त सत्ता ने साहित्यकारो या सृजनशील व्यक्तियों के मन को सबसे अधिक आन्दोलित किया है। प्रेम की इस अमूर्त सत्ता के विषयगत या तात्विक महत्व को दुनिया के सभी भागो मे और मनुष्य के विकास के सभी ऐतिहासिक दौरो मे स्वीकार किया गया। इस 'प्रेम' नामक विषय पर किसी भी समय ने या दुनिया के किसी भी जाति या स्थान ने कुछ कम नही लिखा। किन्तु कोई भी काव्य, जाति और स्थान इस विषय से तुष्टि नही पा सका। दुनिया की श्रेष्ठतम सृजनात्मक कृतियाँ प्रेम नामक मूल वृत्ति के निकट ही निकट हैं। प्रेम की सार्वजनीन, सार्वकालिक और सार्वभौमिक सत्ता है।

किन्तु प्रेम के इस ब्रह्मत्व (सब जगह, सब समय) का जातीय स्वरूप भी है। प्रेम के आलबन, प्रेम के स्वरूप और प्रेम के महत्व का आधार देश और देश मे बदलता है; समय और समय के बाद बदलता है। इस जातीयता और समय के विकास के कारण प्रेम की व्यजना को ग्रहण करने के लिए मनुष्य को अपनी उत्कट भावना के भिन्न-भिन्न आलबन और भिन्न रूपो को ढूंढना पड़ता है। मनुष्य व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के बीच मे अपने प्रेम को ढूंढ सकता है, जातिवाचक या भाववाचक या सर्वनामो मे अपनी सहानुभूति नही बाँट सकता। इसीलिए कृष्ण और राधा, राम और सीता, दुष्यन्त और शकुन्तला के गहन प्रेम के साथ उसकी सहानुभूति हो सकती है, केवल 'प्रेम' नामक भावनात्मक सत्ता के साथ उसका व्यावहारिक या सावेगिक लगाव नही हो सकता। इसी प्रकार मनुष्य की प्रातिभिक क्षुधा प्रेम की एक ही कथा से सतुष्ट नही होती। वह बालक की भाँति नित नवीन कहानी सुनना चाहता है। और कभी-कभी जो कहानी उसे बहुत रुच जाती है, उसे बार-बार भी सुनना चाहता है। वह विभिन्न रूपो मे, विभिन्न घटनाओ के माध्यम से और विभिन्न कल्पनाओं से अलकृत भावों के द्वारा अपनी मूल वृत्ति को तुष्ट करने का प्रयत्न करता है।

मेह-ऊजळी की कथा भी —मनुष्य के अथाह प्रेम की क्षुधा को तृप्त करने के लिए कही गई एक कहानी है। इस कहानी को कहने वाले का नाम हमे पता नहीं। शायद एक कवि ने कही भी नही हो। यह कहानी सौराष्ट्र मे घटी। कहानी को कहने के लिए कथात्मक रूप का सहारा नही लिया गया। कथात्मक रूप से मेरा मतलब है कि वार्ताओ या आख्यायिकाओं को कहने या लिखने के प्रकार को ग्रहण नही किया गया। मेह-ऊजळी मे प्रेमाख्यान की मार्मिक घटनाओ से उत्पन्न विविध भाव-लहरियों को सोरठा नामक छन्द मे किसी का प्रयत्न

लिया गया है। सोरठो मे कहानी नही है। सोरठो मे केवल ऊजळी की विरह-वेदना या मनो-वेदना की अभिव्यक्ति है। कहानी सोरठो के परे है।

सोरठा : हमारे छन्द-शास्त्र के अनुसार अर्द्ध-सम मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम एवं तीसरे चरण मे अर्थात विषम चरणो मे ११ मात्राएँ और दूसरे एवं चौथे चरण मे अर्थात सम चरणो में १३ मात्राएं होती हैं। सोरठे के सम चरण के प्रारम्भ मे जगण का निषेध होता है। पूरा छन्द ४८ मात्राओ का होता है। सोरठा का रूप उलटने पर दोहा-छन्द बनता है। दोहे मे प्रथम एव तीसरे चरण मे १३ मात्राएं और दूसरे एव चौथे चरण मे ११ मात्राएँ होती हैं। दोहा और सोरठा राजस्थान मे सर्व-प्रचलित और अत्यन्त प्रिय छन्दो मे हैं। राजस्थान के लोकजीवन मे प्रचलित अधिकतर कहावतें, दृष्टात, नीति विषयक बातें सभी कुछ दोहो या सोरठो के माध्यम से कही गई हैं। हमारे जनजीवन ने दोहे या सोरठे की गति को इस प्रकार आत्मसात् कर लिया है कि उन्हें अपनी प्रतिभा के अनुकूल मात्राओ को गिनने की आवश्यकता नही रहती और वे अत्यन्त सहजता से अपनी बात को उसी गति मे कह देते हैं। आज भी राजस्थान मे ऐसे अनेक अनपढ व्यक्ति हैं जो मात्राओ एव छन्द के अज्ञान मे भी दोहे या सोरठे रच सकते हैं और उनमे निश्चित ही सभी शास्त्र-नियमो का पालन होता है। दोहा और सोरठा छन्द हमारे प्रदेश की एक जातीय विशेषता बन गया है। इसीलिए शास्त्र-सम्मत नियमोपनियमो मे बँध कर भी मेह-ऊजळी के सोरठे भावो के बधन नहीं बने, बल्कि भावो को उन्मुक्त बना कर उनमे अत्यन्त गहनतम अभिव्यक्ति की उद्‌भावना कर सके। सोरठिये दूहे मे सबधी अनेक उक्तियाँ भी हमारे जनजीवन मे प्रचलित हैं—

सोरठियो दूहो भलो, भल मरवण री बात,
जोबन छाई धण भली, तारा छाई रात।

सोरठियो दूहो भलो, कपडो भलो सपेत,
ठाकरियो दाता भलो, घोडो भलो कुमेत।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेह-ऊजळी की प्रेम-कथा को व्यक्त करने के लिए जन-साधारण ने एक ऐसे छन्द का उपयोग किया जो उनके जीवन मे घुलमिल गया था। जिस छन्द की विशिष्टता को उन्होंने अपने स्वभाव की विशिष्टता बना लिया था। यहाँ यह कहना भी असगत नही होगा कि कविता के सृजन के समय रूप-निर्माण की समस्या ही सबसे महत्वपूर्ण होती है। कहने को तो दुनिया के हर आदमी को कुछ न कुछ कहना होता है। हर विचारशील या सजग व्यक्ति अपनी विशेष धारणाओ के माध्यम से ही अपने वैयक्तिक जीवन का सचालन करता है। किन्तु वह अपनी बात को अपने तक ही सीमित रख सकता है, जब तक कि उसके पास वह शैली या तरीका या रूप देने की क्षमता नहीं हो, जिसकी वजह से वह अपनी बात का प्रभाव अन्य सामाजिक व्यक्ति पर डाल सके। 'विषय मेरे पास अनेक हो सकते हैं [ जिनकी महत्ता के विषय में किसी को कोई सन्देह नहीं ] किन्तु जब तक मेरे पास उन विषयो को सशक्त रूप से व्यक्त करने की शैली नहीं है तब तक वह विषय केवल मेरे जीवन के सकीर्ण घेरे मे ही या उसके इर्दगिर्द चक्कर लगा सकते हैं। इससे अधिक

उनको महत्व नहीं मिलता। किन्तु, यदि मेरे पास रूप देने की क्षमता है, अपनी बात को ऐसे कहने का तरीका आता है जिससे दूसरों पर प्रभाव पड़ सके तो निश्चय ही वह विषय और उसकी अभिव्यक्ति कला का रूप धारण कर लेती है।

ठीक इसी स्थान पर एक समस्या आती है। जब कवि अपने विषय के रूप का मन ही मन निर्धारण कर लेता है तो उस 'रूप' की अपनी आवश्यकताएँ प्रमुख बनने लगती हैं और विषय को उसके अनुरूप ढलना पड़ता है। यदि रूप का निर्माण अत्यन्त कलात्मक एवं श्रेष्ठ बन जाता है तो विषय की गहराई और उसकी प्रभविष्णुता इतनी प्रबल होकर प्रकट होती है कि विषय के कलात्मक महत्व के पीछे कृति के रूप-निर्माण की समस्या का (पाठक को) अनुमान तक नहीं होता। कलात्मक कृति का यही सबसे बड़ा गुण है। लेकिन जब हमें काव्य के भावों के पीछे रूप के निर्माण के संघर्ष का आभास होने लगता है तो निश्चित ही समझ लेना चाहिए कि कवि को अभी बहुत साधना करना शेष है। परन्तु साथ ही रूप का अपना विवेक-सम्मत विकास भी होता है। 'रूप' स्वयं विषय को अपने अनुकूल ढालने का प्रयत्न करता है। मेह-ऊजळी के एक सोरठे को देखिये—

> वीणा जतर तार, थे छेड़या उण राग रा,
> गुण ने रोवू गवार, जात न भीकू जेठवा।

मेह, ऊजळी के मन में प्रेम की ज्योति जगा कर चला गया। जेठवा राजा था—जात का राजपूत था। ऊजळी एक पहाड़ी चरवाहे की गरीब लड़की थी—जात की चारणी थी। दोनों की सामाजिक जगहें बहुत दूर-दूर थी और दोनों की जाति ऐसी थी जो विवाह के सूत्र में नहीं बांधी जा सकती थी। राजा जेठवा ने अपने सामाजिक वैभव का आंचल नहीं थामा। उसने ऊजळी को यही कहा कि चारणी तो राजपूत की बहन होती है। वह विवाह नहीं कर सकता—इसी स्थिति के बाद ऊपर लिखा हुआ सोरठा आता है। ऊजळी की मनोव्यथा को व्यक्त करने के लिए सोरठे की प्रथम पंक्ति 'वीणा जतर तार" से शुरू होती है। अब इसी पहली पंक्ति के साथ ही रूप-निर्वाह की लॉजिक [Logic] प्रारम्भ हो जाती है। दूसरी पंक्ति में कहा गया कि—'थे छेड़या उण राग रा"—वीणा के तारों के उस राग के स्वरों को छेड़ा गया जिनसे कि ऊजळी के हृदय में युगों-युगों से सोया हुआ प्रेम जाग्रत हो गया। जेठवा में वे गुण थे जिससे वह प्रेम के अजर-अमर राग के सुर तो छेड़ सकता था लेकिन राग के प्रभाव को एक बार जाग्रत करके वह जिस सामाजिक बाधा के पीछे जा छिपा उसी बात को संकेत करके ऊजळी के माध्यम से कहलाया गया कि गुण ने रोवू गवार'। ऊजळी तो गुण को रोती है। जेठवा की उस ताकत के लिए विलाप करती है जो प्रेम के राग को छेड़ने की शक्ति रखता है। लेकिन जेठवा तो गवार' है। वह गवार' नहीं समझ सका कि उसके गुण का ग्राहक भी कोई है। वह तो जात-पांत की आड़ लेकर बैठ गया लेकिन गुणों को ग्रहण करने वाली ऊजळी कहती है—'जात न भीकू जेठवा'। मैं जात पांत में भरोसा नहीं करती। 'प्रेम' से बड़ी कोई जात नहीं होती।

इस सारे सोरठे को एक नजर से देखने पर ज्ञात होगा कि 'वीणा' के एक शब्द मात्र

प्रयोग के बाद सोरठे की बातो का क्रम 'रूप' को निभाने के लिए किस प्रकार बनता-बदलता गया। यही छन्द-क्रिया सभी सोरठो और कविताओ मे चला करती है। जो कविता इस रूप की समस्या को निभा लेती है वही कविता अपनी श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकती है।

राजस्थान के लोकजीवन मे प्रचलित इन सोरठो का काव्य-सौन्दर्य अपूर्व है। सोरठे के प्रत्येक चरण मे अनुप्रास की एक अद्भुत छटा है। जब तक अनुप्रास-अलंकार को ढूँढ कर नही देखें तब तक यह अनुमान भी नही होता कि काव्यकार ने यह प्रयत्न भी किया है कि वह प्रत्येक पंक्ति मे स-प्रयास अनुप्रास लायेगा ही। दो सोरठे देखिये—

१—काचो घडो कुम्हार, अरण जाणे उपाडियो,
भव रो भागण हार, जेठी राण जाण्यो नही।

२--फरता आवेल फुल, माळी कोई मळियो नहिं,
माल न जाणे मूल, भमर पाखे भाणना।

पहिला सोरठा राजस्थानी एव दूसरा गुजराती का है। दोनो मे अनुप्रास का निर्वाह है। खास बात यह देखने की है कि जिन सोरठो का अत जेठवा' से हुआ है वहाँ 'जकार' से प्रारम्भ होने वाला शब्द अवश्य है। जहाँ जेठवा के बजाय 'मेह' या मेहउत' शब्द है--वहाँ 'मकार' से प्रारम्भ होने वाला शब्द है। इसी प्रकार जहाँ जेठवा को 'भाँणना' कहा गया है वहाँ 'भकार' शब्द आया है। सोरठो की इस विशिष्ट पद्धति मे सम चरणो की तुक नही मिलाई जाती। अधिकतर सोरठे सबोधन मे समाप्त हुए हैं।

ऊजळी की विरह-वेदना के इस काल मे जेठवा को जिन विशेषणो मे सबोधित किया है—वह भी प्रेम की स्थिति को व्यक्त करते हैं। ऊजळी, जेठवा को—लोभी, प्रीतम, सुगण, मूढ, भव-भवरा भरतार, बाला, परदेसी, अबला रो आधार, माथे रो मोड, गवार और गुमानी—शब्दो के द्वारा याद करती है। प्रत्येक शब्द मे ऊजळी के मन की एक विशिष्ट स्थिति छिपी हुई है। जब वह जेठवा को लोभी कहती है तो जेठवा का कामुक-स्नेह या ऊजळी को प्राप्त करने की लालसा का चित्र आँखो के सामने आ जाता है। लेकिन साथ ही जब वह 'मूढ' के नाम से जेठवा को याद करती है, तो पागल जेठवा की परवशता दिखाई देने लगती है। 'अबळा रो आधार' म ऊजळी के आधारविहीन जीवन की कहानी साकार हो उठती है। सबोधन के प्रत्येक शब्द मे ऊजळी की आत्मीयता घुली मिली हुई है।

सभी सोरठों म विरहाकुल ऊजळी का विमल स्नेह व्याप्त है। विरह को व्यक्त करने के लिए अथवा विरह की उत्तप्त श्वास को पाठक तक पहुँचाने के लिए अनजाने कवियों ने प्रकृति के कितने ही अनजाने कार्य-व्यापारो के प्रति मनुष्य को सजग बनाया है। इन सोरठो मे प्रकृति केवल दर्शक बन कर, या इसे ग्रहण करवाने के लिए केवल उद्दीपन बन कर नही आई है, बल्कि वह स्वय अपनी सम्पूर्ण आत्मीयता लेकर मानव-मन को उद्वेलित करने के लिए उत्सुक दिखाई देती है। इस काव्य में प्रकृति केवल वातावरण नहीं है, वह स्वय कविता है। साथ ही यहाँ प्रकृति के पशु-उपालम्भ साहित्य के चमत्कार जगत के पशु-उपालम्भ भी नही

है। प्रकृति की एक सम्पूर्ण क्रिया—मनुष्य जीवन की एक भावना-निधि का निर्माण करती है। उदाहरण के लिए इन प्रसिद्ध सोरठों को लीजिए,—

टोळो सू टळताह, हिरणा मन माठा हुवे,
वाल्हा बीछ्ड़ताह, जीणो किण विध जेठवा।

जळ पीधो जाडेह, पावासर रे पावटे,
नैनकिये नाडेह, जीव न धापै जेठवा।

जिस समय हिरणों की टोली मे से अचानक एक हिरण टल कर अलग निकलने लगता है तो अन्य सभी हिरणों के मन मे व्याकुलता व्याप्त हो उठती है। किन्तु वे ठहर नहीं सकते। इन पशुओ के मन की क्षणिक विकलता को कवि ने अनुभव किया और पशुओं की उस सहज प्रकृति को उसने जेठवा एवं ऊजळी के प्रेम-सम्बन्ध पर आरोपित किया। जब पशु भी बिछुड़ने पर इस प्रकार व्याकुल हो उठते हैं तब ऊजळी अपने प्रियतम के बिना जीवित ही कैसे रह सकती है? इस सोरठे मे हिरणो के दल की सम्पूर्ण क्रिया के माध्यम से व्यक्त एक सूक्ष्मतम भाव ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार दूसरे सोरठे मे उस विस्तृत व महान् मानसरोवर की बात की गई है जहां मन की मस्ती मे बैठ कर, जी भर कर, पानी पीया था। एक ओर मानसरोवर का वातावरण, उसकी विशालता, उसका प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके पानी देते रहने की असीम क्षमता है तो दूसरी ओर एक छोटी-सी नाडी है, जिसमे मन की क्षुद्रता है, अस्तित्व की क्षणिकता है और देते रहने की सीमा है। भला मनुष्य का मन भरे तो कहां भरे। जेठवा मे स्नेह करने वाली ऊजळी के लिए जेठवा मानसरोवर है, पावासर है और अन्य सभी क्षुद्र नाडी के समान हैं।

इसी प्रकार प्रकृति को मध्यस्थ बना कर इन सोरठो मे मन की विविध गुत्थियो को सुलझाने का प्रयत्न किया है। ऊजळी वर्षा की स्वच्छ जलधार से मन को तृप्त करना चाहती है—नीचे गिरने के बाद गुदले हुए पानी से उसे तुष्टि नहीं होती। वह आम्र-वृक्ष पर लगे हुए रसपूर्ण आम को प्राप्त करना चाहती है—जमीन पर गिरे हुए आम मे वह रस कहां? बिना पानी का हल्का बादल जोर-शोर से आती हुई आंधी मे नाच तो उठा लेकिन उस बादल मे प्रेम रूपी जल की सुखपूर्ण बूंद ऊजळी को कहां प्राप्त हुई? प्रकृति के इन विभिन्न कार्य-व्यापारो को कवि या कवियो ने अपने सम्पूर्ण रूप से ग्रहण किया और उससे उद्भूत एक सूक्ष्म भावनात्मक रूप के आधार पर ऊजळी के विरही मन के सकेत का सृजन किया।

इन सोरठो मे प्रकृति का सजीव चित्रात्मक वर्णन भी आया है। एक प्राकृतिक चित्र जो शब्द के माध्यम से हमारी मन की आंखो के सामने खडा हो जाता है—

तावड तडतडताह, थळ ऊंचो चढता थका,
लाधी लडथडताह, जाडी छाया जेठवा।

सूर्य अपनी विकराल उत्तप्त किरणो से भूमि को विचलित कर रहा है। ऐसे ही समय एक व्यक्ति बिना छाया के ऊंचे थल पर चढ रहा है। व्यक्ति बिल्कुल थक चुका है, हताश हो चुका

है किन्तु अचानक उसी समय, चढाई के किसी मोड पर, भाग्य से उसे एक गहरे वृक्ष की गहरी छाया मिल जाती है। जीवन को सबल मिल जाता है। सारे सोरठे मे अद्भुत चलचित्र-सा अनुभव किया जा सकता है। इसी प्रकार एक सोरठा है—

वे दीसै असवार, घुड़ला री घूमर किया,
अबळा रो आधार, जको न दीसै जेठवो।

साफ मैदान है, दूर क्षितिज तक जाकर आँख टिक जाती है—वहीं क्षितिज के कोर-किनारे पर कुछ सवार दिखाई दे रहे हैं—घोडो पर बैठे हुए हैं और घोडे घूमर के अर्ध-चंद्राकार रूप मे इसी ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। लेकिन इस हृदय का क्या हो ? ऊजळी कहती है—मेरे जीवन का आधार—दूर उन घोडों के घूमर की सवारी करने वाले सवारों मे नहीं है। प्रतीक्षाकुल ऊजळी की नजर अछोर प्रकृति के छोर पर अपने प्रियतम को देख लेना चाहती है।

इन सोरठो की कल्पनाओ का ससार बहुत ही अद्भुत है। इनमे अनेक सोरठे ऐसे भी हैं जो परम्परा से चले आने वाले उपमेय, उपमानों या प्राकृतिक कार्यव्यापारों को स्वीकार करके चलते हैं। इस प्रकार के सोरठों मे हम व बगुला, चकवा, सारस, व कोयल से सबधित सोरठो को ले सकते हैं। ये सभी रूढ या परम्परा रूप से चली आने वाली काव्यात्मक उक्तियाँ हैं लेकिन इनकी सख्या बहुत अधिक नहीं है। अलौकिक और मौलिक कल्पनाओ का यह ऐश्वर्यशाली खजाना है।

'तावड तडतडनाह' वाले सोरठे का अर्थ-सकेत शब्दो के बिल्कुल परे है। 'जाडी छाया' मिल जाना और उसके पूर्व का कठिन श्रम तो केवल प्रसग है—अर्थ-गौरव नहीं। शब्दो के बाद ही यह अर्थ मिलता है कि उस प्राकृतिक विकटता के बाद जो छाया मे सुख और शीतलता मिलती है—ऊजळी को वही सुख जेठवा के मिलने पर मिलता है। सारा सोरठा ही मुख्य अर्थ का गौण सकेत मात्र है।

इसी प्रकार अनेक कल्पनामय प्रयोग इन सोरठो मे हुए हैं—सक्षिप्त मे कुछ का यो उल्लेख किया जा सकता है—

* तू (जेठवा) मेरे स्नेह को अगूठे से गुदगुदा गया।
* इस जोडे की मुखाकृति (उणियारा) तो किसी दूसरी माँ ने उत्पन्न ही नहीं की।
* मुझे प्रेम की जजीरों मे बाँध कर, तू कूची लेकर चला गया।
* बिछुडते समय तूने मुझे नहीं देखा, और दूर चले जाने के बाद भी देखने का प्रयत्न नहीं किया।
* जेठवा—तुम और जल एक ही जाति हो। जिस प्रकार जल की जाति नहीं होती वैसे ही तुम्हारी भी जाति नहीं है।
* नैनो के बिना काजल की रेख। (ऊजळी की अवस्था)

* मैंने अनजान व भोलेपन मे प्रेम का मंहगा मोती उठा कर उसमे अपने जीवन का कच्चा और उलभा हुआ धागा उलभा लिया है—न जीवन को छोड सकती हूँ और न जानने के बाद मंहगे मोती को ही।
* बडी-बडी बूँदो का मेह बरसा, लेकिन मेरे हिस्से की एक भी बूँद मुझे नही मिली।
* सारस के मरने के बाद, निश्चय ही सारसणी मरेगी। लेकिन उसकी प्रेम की लौ युग-युगो तक जलती रहेगी।
* मेरा हृदय बालू-रेत की छोटी कुई के समान है।

इस प्रकार की अनेक और अद्भुत कल्पनाओ का प्रयोग इन सोरठो में हुआ है।

*मेह-ऊजळी से सम्बन्धी इन कुछ ही सोरठो मे विरहिणी ऊजळी की अनेक सूक्ष्म* मनोदशाओ का वर्णन मिल जाता है। इन सोरठो मे ऊजळी का आत्म-निवेदन है, प्रेम के विकल परिणाम की आत्म-स्वीकृति है, ससार के कठिन व्यवहार की आत्मानुभूति है। लेकिन यह सब होते हुए भी उसका प्रेम उसे क्षुद्र नही बनाता, उसे कुटिल और समाज-विरोधी नहीं बनाता। वह, अपने प्रेम के गौरव के लिए, प्रेम की चिरन्तनता के लिए धरती, रवि, शशि और तारो तक को साक्षी देने के लिए तत्पर है। वह विरह-कातर है—किन्तु अपने कार्य मे प्रवृत होकर वह फल को पाने के लिए क्षण भर के लिए भी गाफिल नही है। उसके सामने प्रतीक्षा की परीक्षा है, मिलन के सुख की कल्पना है, विरह की उत्तप्त अनुभूति है। उसने जेठवे के विश्वासघाती राज-प्रेम को देखा है और अपने मन को इस स्नेह के लिए प्रताडित किया है। स्वय की प्रताड़ना के साथ ही, उसने उस व्यवस्था को भी आडे हाथो लिया है जिसने उसके कोमल स्नेह-बन्धन को अपनी जिन्दगी नही जीने दिया। वह विरह मे कभी अत्यन्त विनम्र हो जाती है कभी दीन हीन होकर मिलन के सुख का एक क्षण ही माँगती है तो कभी पूरी निराश होकर स्वय को ढाढ़स और दिलासा देकर ही सन्तोष कर लेती है। वह अपने प्रेमी की *छोटी समझ को भी कोसती है—उसे अपने ससार का विनाशक भी घोषित करती है।* लेकिन 'प्रेम' करना और न करना उसके हाथ की बात नही थी। जिस भावना ने अनजाने उसके हृदय मे विश्राम पा लिया, अब वह उसी शरीर से पृथक नहीं हो सकती। वही उसका जीवन बन गया।

ऐसी ही अनेक भाव-स्थितियाँ इस काव्य की सरिता मे लहरियो की तरह उठती हैं और हमारे जीवन के कल्पनामय और सवेदनाशील हृदय की असीमता मे आन्दोलन उत्पन्न कर हमेशा के लिए एक मीठी याद छोड जाती है।

इस काव्य का यही सौष्ठव है कि वह एक व्यक्ति और एक स्त्री का प्रेम होकर भी समाज के हर एक व्यक्ति और हर एक स्त्री का प्रेम बन गया है। यह काव्य एक ऐसा अद्भुत दर्पण है जिसमे सबको अपने प्रेम का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। •

अर्जुन जोशी

## जेठवा और ऊजळी का प्रेम—एक विवेचन

'विचार सनातन हैं। प्रत्येक वस्तु अपरिवर्तनशील है। शब्द द्वारा निर्दिष्ट क्रिया भी उतनी ही अपरिवर्तनशील है जितना कि शब्द स्वयं। इस प्रकार का विचार मानव-स्वभाव की प्रकृत दुर्बलता है। सच्चाई क्या है? हम वास्तविकता के चंद अंगों की ओर अस्पष्ट हावभाव प्रदर्शित करते हैं। ये मनोभाव इंगित वस्तु की पूर्णता को स्पष्ट नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, ये यह भी नहीं बतला सकते कि इंगित वस्तु अब वही की वही वस्तु है। ये मनोभाव तो उस भिन्न वस्तु की ओर इंगित करते हैं जो कि बनने की अवस्था में है।'

जीवन के हर क्षेत्र में सच्चाई को इस दृष्टि से समझने का प्रयास ही हमें उचित निष्कर्ष तक ले जा सकता है। प्रेम भी जीवन का अभिन्न अंग है। अतः प्रेम से सम्बन्धित किसी प्रकार का विवेचन हमें इसी दृष्टि से करना चाहिए। प्रत्येक युग की जीवन के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अपनी मान्यताएं रहती हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया में गुजरती इन मान्यताओं की सही समझ प्राप्त करने का हमें प्रयास करना चाहिये। जेठवा-ऊजळी प्रेम की विवेचना भी हम इसी दृष्टि से प्रस्तुत करें। उसमें हम प्रेम क्या है, प्रेम किन रूपों में प्रकट होता है, प्रेम के सम्बन्ध में विभिन्न मत क्या हैं, इस पर विस्तार से विचार करेंगे। प्रेम का यही सैद्धान्तिक पक्ष है। इस पक्ष को स्पष्ट कर देने से हमारा निर्दिष्ट विषय भी स्पष्ट हो जायगा।

'सामाजिक सम्बन्धों में जो भी मनोवेगात्मक तत्व हैं उसी को मनुष्य प्रेम की संज्ञा देता रहा है।' प्रेम, जब इस शब्द को उचित रूप में प्रयोग में लाया जाता है, स्त्री-पुरुष के किसी भी या सारे सम्बन्धों का निर्देश नहीं करता। यह तो केवल उसी सम्बन्ध का निर्देश करता है जिसमें यथेष्ट मनोवेग का समावेश रहता है। यह सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक भी है और शारीरिक भी। यह तीव्रता के किसी भी मान तक पहुंच सकता है। 'सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रेम की अपनी परिभाषा देते हैं। उनके अनुसार प्रेम स्पष्ट रूप में निर्धारित स्वभाव-आकार है जो

विशिष्ट उत्तेजक-प्रवृत्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। प्रचलित विचार के अनुसार तो उस मनोवेगात्मक ग्रंथि को एक ही नाम दिया जा रहा है जो पुरुष व स्त्री को लैंगिक रूप मे, आदमी और आदमी के बीच मित्रता मे, माता-पिता व संतान को पारिवारिक सम्बन्धो मे बांध देती है। स्पष्ट अन्तर होते हुए भी नेता के जनता के प्रति, शिष्य के गुरु के प्रति, पशु के अपने शावक व स्वामी के प्रति, प्रेम को एक ही श्रेणी के अन्तर्गत ले लिया गया है।'

फ्रायड के प्रेम के सम्बन्ध मे अपने ही विचार हैं। उसका विचार है 'कि सारे मनोवेगात्मक सम्बन्ध केवल लैंगिक प्रेम के ही रूपान्तर है। आदमी इसीलिए ही कोमल सम्बन्धो की सारी किस्मो को 'प्रेम' कहता है, क्योकि वे केवल परिष्कृत लैंगिकता या पथभ्रष्ट लिबिडो हैं। कोमलता तो निरोधित लैंगिकता ही है। फ्रायड का यह दृष्टिकोण यूँ तो बड़ा सरल अत. आकर्षक लगता है लेकिन यह है भ्रान्त विचार-क्रिया पर आधारित। इससे यह मान कर चला जाता है कि एक स्पष्ट निर्दिष्ट लक्ष है और वह है लैंगिक सभोग। कोई भी प्रेम जो इसे प्राप्त नही करता वह किसी अर्थ मे सही, निरोधित अवश्य है।'

'फ्रायड के प्रेम के सिद्धान्त मे बाल-लैंगिकता का एक महत्वपूर्ण भाग है। बाल-स्नेह किस प्रकार निरोधित लैंगिक सभोग हो सकता है ? बालक को सभोग का अनुभव ही नही होता। अत सजग रूप मे उसे सभोग की चाह हो ही नही सकती। अचेतन रूप मे इसका प्रश्न ही नही उठता। बच्चे का प्रेम तो अन्य प्रकार का प्रेम है। उसे बाल-स्नेह ही कहा जायगा। यह सत्य है कि बाल-स्नेह शरीर मे ऐसे अवयवी क्षेत्रो से जुड़ा हुआ है जो आगे चल कर लैंगिक तौर से प्रेम की अभिव्यक्ति करने वालों के रूप मे विकसित होते हैं। इसका तो यही अर्थ है कि मनुष्य भी पार्थिव है, उसके भी शरीर है और यह शरीर अन्य शरीरो से विभिन्न रूपो मे सबध स्थापित करता ही है। दुनिया के अन्य लोगो के साथ उसके सबध अवश्यम्भावी रूप मे वास्तविक शारीरिक सबध होने चाहिएँ। बाल-स्नेह निरोधित लैंगिक प्रेम नही हो सकता क्योकि न तो बच्चा सभोग को एक लक्ष की तरह समझता है और न वह इसे समझने की क्षमता ही रखता है। यह सत्य है कि बाल-स्नेह कालान्तर मे लैंगिक प्रेम के रूप मे विकसित अवश्य होता है।'

'अत लैंगिक प्रेम व्यवहार प्रतिदान है। इसमे सभोग की इच्छा का भी समावेश है। इसका एक विशिष्ट उत्तेजक प्रवृत्ति ही आव्हान करती है। प्रचलित अर्थ मे जिस रूप मे 'प्रेम' शब्द का प्रयोग किया जाता है उसमे ऐसे परिष्कृत स्वभाव-आकार यथा अन्य लोगो की उपस्थिति मे प्रसन्नता का अनुभव, किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रति ही सूक्ष्म आकर्षण, उनके प्रति उदारता, उन्हे देखने की इच्छा व अन्य विभिन्न प्रकार के अनुरागपूर्ण व्यवहार का भी समावेश होता है। इनका मनोवैज्ञानिक केवल औपचारिक व शुष्क रूप मे ही वर्णन कर सकते हैं। अवश्य इसमे सभोग की इच्छा का भी समावेश है। केवल ऐसे स्वभाव-आकारो को ही, जिनका कि यह अन्तिम स्वभाव-आकार अभिन्न अग है, लैंगिक-प्रेम पुकारा जाना चाहिए। मित्रता के अन्य सारे स्वरूपो मे सभोग की निरोधित इच्छा निहित है।' इस प्रकार का अनुमान करना भ्रान्ति का पोषण करना है।

उपरोक्त विवेचन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल संभोग ही लक्ष नही है। प्रेम संभोग की इच्छा से कही भिन्न वस्तु है। यह ऐकातिक भावना के शिकार स्त्री-पुरुषो के जीवन से नीरसता को दूर करने वाला प्रमुख रस है। 'बहुत से लोगो मे सासारिक शुष्क व्यवहार व निर्दयता के प्रति गहरा भय है।' अनुराग के लिए उनकी प्रबल चाह रहती है। 'पर यह भावना बहुधा पुरुषो मे रूखेपन, असभ्य व्यवहार, भक्कीपन के आवरण मे छिपी रहती है। स्त्रियो मे भगड़ालूपन, दोष निकालने, निंदा करने के स्वभाव से यह भावना ढकी रहती है।' पारस्परिक तीव्र अनुराग ऐसे अनुभवो को खत्म कर देता है। यह अहम् की दुर्भेद्य भित्तियो को उखाड दूर करता है।' और एक नये प्राणी को प्रस्तुत करता है जो एक आत्मा दो काया के रूप मे प्रतिष्ठित होता है। 'प्रकृति ने मानव प्राणी को प्रजनन कार्य के लिए बनाया है। यह कार्य अकेले पुरुष या स्त्री से सभव नही। और सभ्य मानव अपनी लैंगिक अन्त प्रवृत्ति को प्रेम के बिना तृप्त नही कर सकते। मानव पूर्णता के साथ मानसिक व शारीरिक रूप से एकात्म स्थापित नही कर पाता, अन्त प्रवृत्ति को पूरी तृप्ति नही मिलती। जिन्हें पारस्परिक आनन्दमय प्रेम के नैकट्य व तीव्र सहयोगीपन की अनुभूति नहीं है उन्होने जीवन की उत्तम देन को खो दिया। चेतन या अचेतन रूप मे वे इसे अनुभव करते हैं। ऐसे ही लोग निराशा ईर्षा, दमन व निर्दयता की ओर प्रवृत्त होते हैं।'

जेठवा और ऊजळी के प्रेम मे हमे तीव्र अनुराग, मानसिक व शारीरिक रूप मे एकात्म स्थापित करने की भावना स्पष्ट दृष्टिगत होती है—

टोळी सू टळताह, हिरणा मन माठा हुवै,
वाल्हा वीछ्रताह, जीणो किण विध जेठवा।

हिरण अपनी टाली मे बिछुड जाते हैं तब व्याकुल हो भटकते रहते हैं। ऊजळी का प्रेमी जेठवा उससे बिछुड गया। अब इस प्रेमिका का जीना सम्भव नही है। ऊजळी ने अनुभव किया है कि उसका एकात्म तो जेठवा के साथ ही हुवा और अब उस प्रेम के बीच व्यवधान उपस्थित हो जाने से मन की वेदना अति तीव्र हो उठी है।

आख्या उणियारोह, निपट नही न्यारो हुवै,
प्रीतम मो प्यारोह, जोनी फिर रे जेठवा।

गहन प्रेम की भावना का यह सोरठा कितना शक्तिशाली प्रतिनिधि है। प्रिय की सूरत आंखों मे अपना स्थाई स्थान बना चुकी। प्रेमिका के सामने से वह रूप दूर हो तो किस प्रकार। लेकिन प्रियतम प्रेमिका से दूर है और प्रेमिका उसके रूप को ढूंढने का हर कहीं निरन्तर प्रयास करती है।

नैकट्य और एकात्मता की भावनाओं की अभिव्यक्ति हम इन सोरठो मे मिलती है। लेकिन ऊजळी की वेदना का तीक्ष्ण रूप भी साथ ही साथ समझ मे आता है। स्पष्टत एक पक्ष की भावनाएं हमारे सामने है। दूसरे पक्ष प्रेमी जेठवा की क्या स्थिति थी? उसके तीव्र अनुराग

पर किन शक्तियों ने विजय पाली ? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर प्रसंग के अनुसार ही हम विचार करेंगे।

ऊजळी का प्रेम केवल मानसिक ही न था। प्रेम के संबंध में विचार करने में ऐसे तर्क भी प्रस्तुत किये जाते हैं--प्रेम तो आध्यात्मिक है। भौतिक तुच्छता से इसका क्या संबंध। भौतिक मान कर तो प्रेम को कलुषित किया जाता है। इस प्रकार के तर्क एकांगी हैं, सत्य को विकृत करने वाले हैं, अतः परिष्कृत ज्ञान से परे हैं। हमने पहले ही मानसिक व दैहिक एकात्म में प्रेम की पूर्णता को स्पष्ट किया है। ऊजळी भी अपनी भावनाओं को अस्पष्ट नहीं रखती--

जोबन पूरे जोर, माणीगर मिळियो नहीं,
मारै जग में मोर, (हूँ) जोगण होगी जेठवा।

यौवन अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका, पर उसे भोगने वाला नहीं मिला। ऊजळी का हृदय दैहिक एकात्म के लिए विकल है। वेदना के स्वर अपनी तीव्रता को और तीव्र बना देते हैं और ऊजळी स्पष्टतर शब्दों में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए कह उठती है--

नोध्यु दीयो तमे, जेठवा जीवाड्ये नहि,
तारा अगना अमे, भूख्या छैये भाणना।

निराधार व्यक्ति को संकुचित हृदय से आश्रय दे, उसी प्रकार प्रेमी से प्रेमिका को प्रेम प्राप्त हो रहा है। प्रेमिका तो उसके शरीर की भूखी है। उसकी भूख प्रेमी के सहवास से ही मिट सकती है।

मध्ययुग ने जेठवा और ऊजळी के प्रेम को जन्म दिया। इस प्रकार प्रेमियों की गाथाएँ लोक गीतों व लोक कथाओं के माध्यम से बहुत ही प्रचलित हैं। चारण पुत्री ऊजळी राजपुत्र जेठवे के सम्पर्क में आई। परिस्थितियों ने प्रथम-मिलन-सहवास, एक साथ शयन के रूप में ही कराया। चारण पुत्री ने बाद में ही जाना कि जेठवा राजपुत्र है। राजपुत्र और चारणी का प्रेम ! महल और झोंपडी का प्रेम ! महल, जो सुगमता से उपलब्ध नहीं हो सकता। जो सामान्य विमान की पहुँच से बहुत दूर है। ऊजळी ने विश्वास किया, ऐसी वस्तु को प्राप्त करने का, जो सामान्य आदमी को उपलब्ध होनी बहुत कठिन थी। प्रारम्भ में दोनों के प्रेम-मिलन होने रहे लेकिन फिर राजकुमार को मन्त्रों की प्रतानिकाओं ने रोक दिया। दोनों के रोमान्स-पूर्ण प्रेम की कहानी का यह महत्त्वपूर्ण भाग है। यहाँ हम रोमान्सपूर्ण प्रेम के सम्बन्ध में अपनी समझ स्पष्ट करेंगे।

'रोमान्सपूर्ण प्रेम मध्ययुग का सामान्य रूप से मान्य प्रेम का स्वरूप है। इसके अनुसार यह मान्यता है कि प्रिय वस्तु की प्राप्ति बड़ी कठिन होती है व प्रिय वस्तु बड़ी मूल्यवान भी होती है। अतः प्रिय वस्तु के प्रेम को प्राप्त करने के लिए कठोर प्रयास करने पड़ते हैं।' इस

प्रकार के प्रेम मे प्राय देखा गया है कि प्रिय वस्तु को प्राप्त करने वाला या वाली सामान्यतः साधारण सामाजिक स्थिति के होते हैं और युग की मान्यता के अनुसार प्राप्त किया जाने वाला या वाली उच्च स्थिति का राजकुमार या राजकन्या या ऊँची जाति का युवक या युवती होते हैं। हम इस सम्बन्ध मे किसी अपवाद को नहीं ले रहे हैं। प्रेमी अपनी प्रेमिका को अथवा प्रेमिका अपने प्रेमी को सामाजिक नियमो या नैतिक मान्यताओं की खाई के कारण बिछुड़ जाना पड़ता है। दोनों के विछोह की वेदना से रोमान्सपूर्ण कविता की उत्पत्ति होती है।

'मध्ययुग मे धर्मगुरु, धर्मशास्त्र लैंगिक प्रेम को इस प्रकार से लगातार निकृष्ट व अपवित्र ठहराते रहे कि सामान्यतः उसके प्रति तीव्र भावना पैदा होना सम्भव नहीं था। इस प्रकार कवित्वमय भावनाओ का पैदा होना भी असम्भव ही था।' अत साधारण सामाजिक स्तर के प्रेमी या प्रेमिका के लिए उनकी प्रेमिका या प्रेमी का उच्च स्तर का होना जरूरी था। ऐसे ही प्रेमी अथवा प्रेमिका की प्राप्ति असम्भव सी प्रतीत होती थी और ऐसी स्थिति मे *उनके लिए कवित्वपूर्ण मनोवेगो का जाग्रत होना और उनका कविता के रूप मे प्रकट होना* सहज ही समझ मे आता है। आधुनिक युग की प्रेम-सम्बन्धी मान्यताएं भिन्न हैं, अत आधुनिक लोगों के लिए मध्ययुग के प्रेमी कवि के मनोविज्ञान और अनुभूति को अनुभव करना बहुत ही कठिन है।

रोमान्स सम्बन्धी कविताओ की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विशिष्ट प्रकार के अपवाद भी देखने मे आते हैं।

'एक व्यक्ति जो अपनी प्रेमिका से अतीव प्रेम करता है वह उसके साथ लैंगिक सम्बन्ध का विचार भी अपने दिमाग मे नही आने देता। वह उस प्रेमिका को महान, पवित्र, उच्चतम प्राणी मानता है। इस स्थिति मे भी प्रेमिका अप्राप्य ही रहती है। अत उसका प्रेम कवित्वपूर्ण व कल्पनाजन्य रूप ले लेता है और स्वाभाविक तौर से प्रतीकवाद से परिपूर्ण रहता है।' प्रेम के प्रश्न पर कठिनताओं व फिर प्रेमिका से मिलने व उपदेश मिलने की स्थिति मे लैंगिक प्रेम के प्रति विरक्ति पैदा होने से भी विशिष्ट प्रकार के रसपूर्ण काव्य की रचना मध्ययुग मे हुई है। योरोपीय साहित्य मे दाँते की कविता प्रथम श्रेणी मे आ सकती है। भारतीय साहित्य मे सूर, तुलसी मीरा के काव्य के विभिन्न अग दूसरी श्रेणी मे लिये जा सकते हैं।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँच पाते हैं कि रोमांसपूर्ण प्रेम मध्ययुग मे उत्तम कोटि की काव्य-रचना का प्रेरणा-स्रोत रहा है। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि 'प्रेम काव्य स्वतन्त्रता व सामाजिक रूढ़ियों के बीच एक विशेष प्रकार के सन्तुलन पर आधारित रहता है। जहाँ कहीं एक पक्ष मे सन्तुलन का पलड़ा झुक जाता है तब प्रेम काव्य अपने श्रेष्ठ रूप मे नहीं रहता।*

जेठवा-ऊजळी प्रेम मे चारण कन्या राजकुमार को प्राप्त करने की कामना करती है। वह सामाजिक बन्धनो मर्यादाओं के तानों, मार्गों की घृणा की परवाह नहीं करती। हर प्रकार

---

* Marriage and Morals—*Russell Bertrand*, p. 62.

की बाधाओं का सामना करने को प्रस्तुत रहती है। वह स्वयं अपने युग की सामाजिक मान्यताओं की अवहेलना करने को तत्पर रहती है। राजपुत्र को प्राप्त करना सरल नहीं। ये ही प्रेमी को प्राप्त करने की अत्यन्त कम सम्भावनाएँ, प्रेमी से मिलने के पश्चात लम्बे युग तक विछोह, जेठवा के नाम से सम्बोधित सोरठों के जीवन स्रोत हैं। कवित्व की दृष्टि से, व्यंजना की दृष्टि से, संवेदनशील भावनाएँ जाग्रत करने की दृष्टि से ये सोरठे उच्च कोटि की कलाकृति के रूप में उपस्थित होते हैं।

कोयल बाळी कूक, मालै मो उर मे सदा,<br>
हिवडै हालै हूक, जग मे मिळै न जेठवो।

*

आवै और अनेक, जां पर मन जावै नहीं,<br>
दीसै तो विन देख, जागा सूनी जेठवा।

*

जिणसूं लाग्यो जोय, मन सो ही प्यारो मनां,<br>
कारण और न कोय, जात-पात रो जेठवा।

*

जळ पीधो जाडेह, पाबासर रे पावटे,<br>
नैंनकिये नाडेह, जीव न धापै जेठवा।

इन सोरठों में से कुछ अवश्य ऊजळी ने कहे होंगे। चारणों के लिए मध्ययुग में कविता करना तो सामान्य सी वस्तु थी। पर अधिकतर सोरठे अज्ञात ग्राम कवियों के लिखे मालूम होते हैं। कालान्तर में अवश्य कुछ सोरठे शिक्षित डिंगल कवियों ने भी 'जेठवे के सोरठे' बना कर जोड़ दिये होंगे। सोरठों में भाषा का विभेद हमारे कथन की सत्यता प्रमाणित करता है। इस सम्बन्ध में अधिकारपूर्ण भाषा में तो भाषा-शास्त्री ही विचार प्रस्तुत कर सकते हैं। सोरठों में से अधिकतर शिक्षित कवियों की तराशी हुई भाषा से दूर हैं। वे स्पष्ट तौर से ग्रामीण जनता की भाषा में लिखे गये हैं। लोक साहित्य की शक्ति सदियों तक जनता के जीवन में समाये हुए जीवित रहने में है। लोक काव्य की यही महानता है।

लोक काव्य पुस्तकाकार में सुरक्षित नहीं रखा गया। दरबारी कवियों के ग्रंथों की भाँति उसे बादशाहों या राजाओं ने संरक्षण नहीं दिया। फिर भी लोक-काव्य तो गाँव गाँव, चोहटे-चोहटे ढाणी-ढाणी व प्रत्येक जबान पर फैल गया और आज तक अपनी विजय-दुंदुभि बजा रहा है। इसका कारण क्या है? 'लोक कवि अपने समाज से दूर नहीं हुआ। उसकी चेतना के स्तर व सामाजिक चेतना के स्तर के बीच विशाल खाई न बन सकी। उसकी भाषा अवश्य परिष्कृत थी वह बोलने में चतुर होता था, लेकिन वे उसके सतत व्यवहार के कारण ही थे। उसका सुनने वाला वर्ग उसी के स्तर का था। किसी सीमा तक समाज में अधिकतर लोग कवि प्रकृति के थे। इसी कारण लोक काव्य के कवियों का नाम अज्ञात ही रहा।' जेठवे के सोरठों की भी यही स्थिति है। आज तक कोई जान नहीं पाया कि इन्हें किसने लिखा।

ऐसा लगता है कि सदियो से वायुमंडल मे भ्रमण करते-करते ये ग्रामीणो के चित्त मे समाये रहे। हर युग मे नये-नये कवि इसमे नये सोरठे जोड़ते गये। ऊजळी की विरह-वेदना ने उन्हें संवेदना करती रही थी। आधुनिक कविता इस लोक-कविता से बहुत भिन्न है। आधुनिक कविता उस सभ्य समाज की कविता है जो अत्यन्त व्यक्तिपरक है। आज का कवि भी इसी समाज की उपज है, अत. अति व्यक्तिवादी है।

जेठवा-ऊजळी के प्रेम की विवेचना करते समय कई ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं जिन्हें स्पष्ट तौर से समझना और उनका हल प्रस्तुत करना अत्यावश्यक हो जाता है। पहला प्रश्न है—ऊजळी के पिता ने कुँवारी पुत्री को एक अनजान के साथ कैसे सोने दिया, चाहे यह उस व्यक्ति की प्राणरक्षा के लिए ही क्यो न किया गया हो? इस प्रश्न को प्रस्तुत करते समय हमारे सामने आधुनिक सभ्य समाज की नैतिक मान्यताओं की ही कसौटी रहती है। प्रत्येक युग मे प्रत्येक समाज की नैतिक मान्यताएँ एकसी नही रहती। मध्ययुग मे पहाडी चरवाहा-किसान लोगो के सामाजिक रीति-रिवाजों व मान्यताओ को जानने का यह प्रश्न है। सौराष्ट्र के प्रसिद्ध लोक साहित्यवेत्ता स्व. झवेरचन्द मेघाणी अपनी पुस्तक सोरठी गीत कथाओ मे पृष्ठ १३ पर इसी प्रेम कथा के संबंध मे कहते हैं—' मूसलाधार वर्षा की एक मेघाच्छादित रात्रि मे, भीगने से मृतप्राय बने एक राह से भटके घुड़सवार को पहाड़वासियो के पुरातन परित्राण की प्रथानुसार अपने—"पड्य ना पलग करी, धडनो ढोलियो ढाळी, उरने ओढीके पोढाडी...... पहाडी देह ने शरीर की गर्मी दे जीवित किया।"

पहाडवासियो की पुरातन परित्राण प्रथा हिमालय की तराई के कई पहाडी प्रदेशो मे आज भी प्रचलित है। अतिथि की सेवा के लिए पुत्री या पत्नि को भेजना कई देशो के आदिवासियों मे भी प्रचलित है। जहाँ आधुनिक सभ्यता इन पहाडी अथवा आदिवासी क्षेत्रो मे नही पहुँच पाई है पुराने रीति-रिवाज व मान्यताए जीवित रूप मे हमे देखने को मिलती हैं। मध्ययुग मे ( १३ वी शताब्दि के दूसरे-तीसरे दशक में घटी यह घटना बतलाई जाती है ) इन पहाडी लोगो मे आतिथ्यकाल के लिए ऐसी प्रथा का प्रयोग आश्चर्य की बात नही है।

अब अन्य समस्याएं हैं जिन्हे भी स्पष्टत. हल करना आवश्यक है। वे हैं—ऊजळी ने प्रेम के सम्मुख जातिगत रीति-रिवाज के प्रति विद्रोह किया। चारणी-राजपूत का बहन भाई का संबंध माना जाता है, लेकिन ऊजळी ने प्रेम के सामने इस अप्राकृत बंधन को भी तोड डाला। उसने संबंधियो से नाता तोडा, घरबार छोड जेठवा राणा से मिलने व उसे विवाह के लिए राजी करने घूमली नगर गई। जेठवा राणा ने उसे अपमानित किया। इतना सब सहन करके भी ऊजळी जेठवा की मृत्यु पर उसकी चिता के साथ जल मरी। सती हो गई। इन विद्रोही भावनाओं और बंधन-पूर्ण नैतिक मान्यताओं के अंतर्विरोध को कैसे समझाया जाय। इस अन्तर्विरोध को समझने व स्पष्ट करने के लिए हमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण का सहारा लेना पड़ेगा।

'प्रकृति व मनुष्य दोनो विकासशील और परिवर्तनशील हैं। पुरुष और नारी के सम्बन्धों की नैतिकता या आचार-विचार हर युग मे एक से नहीं रहते। वे लगातार बदलते रहते हैं।

महाभारत मे इसी तथ्य को लेकर भीष्म पितामह कहते हैं कि चारों युगो के यौन-सम्बन्ध कृतयुग मे सकल्प, त्रेतायुग मे स्पर्श, द्वापर मे मैथुन व कलियुग मे द्वन्द्व रूपों मे व्यक्त होते हैं। प्राचीन गणों के रूपो मे रहने वाली वर्तमान जातियो मे वैवाहिक सम्बन्ध के विकास का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर हम यह समझ पाते हैं कि सकल्प यौन-सम्बन्ध बन्धनहीन सम्बन्ध था। यह इसकी कामना करने वाले दो व्यक्तियो मे हो सकता था। संस्पर्श यौन-सम्बन्ध मे अत्यन्त निकट सम्बन्धियो के साथ व सगोत्र विवाह निषिद्ध था। भिन्न-भिन्न गोत्र आपस मे सम्बन्ध स्थापित करते थे। मैथुन प्राकृतिक विवाह सम्बन्ध की अन्तिम अवस्था है। यहाँ से यूथ-विवाह का अन्त हो गया। पति-पत्नी इच्छा रहती तब तक एक कुटुम्ब मे बँधे रहते थे। दूसरे नर नारियो से यौन-सम्बन्ध स्थापित नही करते थे। द्वन्द्व यौन-सम्बन्ध कलियुग मे प्रचलित है। इसके अनुसार एक पति व एक पत्नि का जोडा होता है। यौन-सम्बन्ध के इस रूप मे नारी पुरुष की दासी होती है। पुरुष व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार व एकाधिपत्य की शक्ति को लेकर निरन्तर नारी का विरोधी बना रहता है।'

'हिन्दुओ के परम्परागत साहित्य मे विवाह के वर्तमान रूप को उसका प्राचीन रूप नही माना गया है।' विवाह का वर्तमान रूप विकास की एक अवस्था मे ही प्रकट हुआ है। महाभारत मे रोगी राजा पाण्डु ने अपनी पत्नियो माद्री व कुन्ती को अन्य पुरुषो से सन्तान उत्पन्न करने को कहा था। भीष्म की सौतेली माँ ने अपनी पुत्रवधु से नियोग द्वारा दूसरे पुरुषों से पुत्र उत्पन्न कराया। 'महाभारत, पुराण व वेदो मे यह लगातार लिखा मिलता है कि कलियुग के विवाह और परिवार का रूप एक नई वस्तु है। ये कुछ आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए एक नया सामाजिक प्रयोग है। यह प्राकृतिक नही है। कलियुग के विवाह और परिवार का रूप कैसा था ? एक पति और पत्नि की मर्यादा मे नारी बाँध दी जाती थी और इस मर्यादा को केवल नारी को ही निभाना पडता था। इस युग मे बच्चे माता के नाम से नही, लेकिन पिता के नाम से जाने जाते थे। इस परिवार का निर्माण ऐसे ही वैवाहिक सम्बन्धो के आधार पर होता था।'

पौराणिक इतिहास ने विभिन्न युगो मे परिवर्तित यौन-सम्बन्धो व परिवार-व्यवस्था के सम्बन्ध मे स्पष्टता प्रस्तुत की है। परिवर्तनशील यौन-सम्बन्धों के साथ-साथ उन युगो की नैतिक मान्यताएँ भी परिवर्तनशील थी। मातृसत्ता के युग मे परिवार मे माता का ही आधिपत्य था। वही परिवार की प्रमुख शक्ति थी। सामाजिक उत्पादन मे उसकी देन परिवार के आन्तरिक कार्यों का सुचारु रूप मे सचालन करने के रूप मे रहती थी। इस प्रकार पारिवारिक श्रम मे उसका श्रम भी प्रमुख स्थान रखता था। लेकिन व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय होते ही पुरुष का महत्व बढ गया। इस परिवर्तन की विशद व्याख्या करते हुए एगेल्स लिखते है,—

"जानवरो के रेवड और झुड कब और कैसे, कबीले अथवा गण की सामूहिक सम्पत्ति से, अलग-अलग परिवारो के मुखियाओ की सम्पत्ति बन गए, यह हम आज तक नही जान सके हैं। जानवरो के रेवड तथा दूसरी चीजों के रूप मे धन के मिलने मे परिवार के अन्दर एक क्रान्ति हो गई। जीविका कमाना सदा पुरुष का काम रहा था। वह उसके साधनो को

तैयार करता था और उसका स्वामी होता था। अब जानवरो के रेवड जीविका कमाने के साधन बन गए थे। जगली जानवरो को पकड कर पालतू बनाना, फिर उनका पालन-पोषण करना, यह पुरुष का ही काम था। इसलिए यह जानवरो का मालिक होता था और उनके बदले मे मिलने वाले तरह-तरह के माल और दास का भी मालिक होता था। इसलिए उत्पादन से जो अतिरिक्त पैदावार होती थी वह पुरुष की सम्पत्ति होती थी, नारी उसे खर्च करने मे हिस्सा बँटाती थी, परन्तु उसके स्वामित्व मे नारी का कोई भाग नही होता था। 'जंगली योद्धा' और शिकारी घर मे नारी को प्रमुख स्थान देकर खुद गौण स्थान से ही सतुष्ट था। 'अधिक सुसस्कृत' गडरिये ने अपनी दौलत के जोर से मुख्य स्थान पर खुद अधिकार कर लिया। नारी को गौण स्थान मे ढकेल दिया। नारी कोई शिकायत न कर सकी। पुरुष और पत्नि के बीच सम्पत्ति का विभाजन परिवार के अन्दर श्रम के विभाजन पर निर्भर करता था। श्रम का विभाजन पहले जैसा ही था, फिर भी अब उसने घर के अन्दर के सबध को एकदम उलट-पुलट दिया था, क्योकि परिवार के बाहर श्रम का विभाजन बदल गया था। जिस कारण पहले घर मे नारी की सत्ता थी यानी घरेलू कामकाज तक ही सीमित रहना, वही अब घर मे पुरुष का आधिपत्य कायम हो जाने का कारण बन गया। जीविका कमाने के पुरुष के काम की तुलना मे नारी के घरेलू काम का महत्व घट गया।

जब घर के अन्दर पुरुष का सचमुच आधिपत्य कायम हो गया तो मानो उसकी तानाशाही कायम होने के रास्ते मे जो आखिरी बाधा थी, वह भी टूट गई। मातृसत्ता को नष्ट कर, पितृसत्ता को कायम कर और युग्म परिवार को धीरे धीरे एकनिष्ट विवाह की प्रथा मे बदल कर इस तानाशाही को पक्का और स्थायी बना दिया गया। इसमे पुरानी गण-व्यवस्था मे दरार पड गई। एकनिष्ठ परिवार एक ताकत बन गया और गण के अस्तित्व को मिटा देने की धमकी देने लगा।'*

'मातृसत्ता का विनाश नारी जाति की एक ऐसी पराजय थी जिसका पूरे विश्व के इतिहास पर प्रभाव पडा। अब घर के अन्दर भी पुरुष ने आधिपत्य जमा लिया। नारी पदच्युत कर दी गई। वह जकड दी गई। वह पुरुष की वासना की दासी, सतान उत्पन्न करने की एक यत्र मात्र रह गई।'*

एगेल्स द्वारा किया गया उपरोक्त विश्लेषण कुछ अपवादो के साथ हमारे देश मे भी परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति के विकास के सम्बन्ध मे लागू होता है। हमारे पौराणिक ग्रथो का विश्लेषण इसे अत्यन्त स्पष्ट कर सकता है।

यह सब विकास सम्भव किस प्रकार हुआ? क्या इसके पीछे केवल हिंसा का ही हाथ था? नही। हमारे देश के जीवन के विकास मे धर्म व उसके द्वारा प्रतिष्ठापित मान्यताओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धर्म के नाम पर विभिन्न नियम बनाए जाते रहे। और

---

*परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति, पृष्ठ २२४-२६।

*उपरोक्त पृष्ठ ७४।

पीडित व शासित वर्ग को उन्हे मानने के लिए मजबूर किया जाता रहा। युग बीते इन्ही नियमो की मान्यताएँ लोगो के लिए स्वभाव बन गई। भविष्य की पीढ़ियो के लिए ये ही नियम पवित्र रीति-रिवाज बन गये।

नारी के सम्बन्ध मे मनुस्मृति मे जो आदेश व उपदेश हैं वे हमारी स्थापना को दृढ करते हैं। मनु कहते हैं—

> विशील. कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः,
> उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पति.।
>
> —मनुस्मृति ५, १५४

[चाहे सदाचारहीन हो, चाहे कामी-दुराचारी हो और चाहे गुणहीन हो, सती-साध्वी स्त्री को पति की सदा देवता के समान सेवा करनी चाहिये।]

> न स्त्रीणा पृथग्यज्ञं न व्रत नाप्यु पोषणम्,
> पति शुश्रूयते येन तेन स्वर्गे महीयते।
>
> —मनुस्मृति ५, १५५

[स्त्रियो के लिए न कोई जुदा यज्ञ है, न व्रत और न उपवास। यदि वे पति की सेवा करें तो उसी से स्वर्ग मे पूजी जाती है।]

इन आदेशो की धर्म-भीरू नारी कैसे अवहेलना कर सकती है। पति परमेश्वर है। पति के प्रति एकनिष्ठा ही उसका सतीत्व है। सतीत्व की पवित्रता की रक्षा करना नारी के जीवन का सबकुछ है। ये विचार नारी के स्वभाव मे घुल चुके थे। ऐसी सूरत मे जेठवे द्वारा तिरष्कृत ऊजळी चारण कन्या होकर दूसरे किसी से विवाह की कल्पना ही कैसे करती। उसे ऐसी कल्पना मात्र करने से कुभीपाक नरक का भागी बनना पडता। स्त्री अपने आपको अबला और पुरुष को अपना आधार मानने लगी थी। ऊजळी एक बार खुले रूप मे जेठवा के साथ शयन कर चुकी। शयन पति के अलावा और किसके साथ सम्भव हो सकता है? जेठवा तो पुरुष ठहरा। उसके लिए धार्मिक विधान बाधक नही था। वह किसी अन्य से विवाह करने के लिए स्वतन्त्र था। ऊजळी की निरीहता इसी मे स्पष्ट है—

> वे दीसै असवार, घुडला री धूमर किया,
> अबळा रो आधार, जको न दीसै जेठवो।

ऊजळी अबला और जेठवा उसका आधार!

जेठवा राजकुमार है। राजपूत है। राज्य का भावी अधिकारी है। रूढि के अनुसार चारण-राजपूतो मे भाई-भाई का सम्बन्ध। चारणी राजपूत की इस तरह बहन ठहरी। उससे जेठवा का विवाह क्योंकर सभव हो। जेठवा प्रथम तो प्रेम करता है लेकिन उपरोक्त रूढिगत परम्परा को तोडने का विचार मात्र दर्शाने ही समाज की रूढिवादी शासक शक्तियों का

विरोध उसके सामने उग्र रूप धारण करके उपस्थित होता है। हो सकता है कि उसके लिए इस प्रश्न पर राज्य का अधिकार छोड़ने की भी नौबत आ गई हो। उसका प्रेम सामन्ती मान्यताओं के सामने घुटने टेक देता है। अपने द्वार पर आई अपनी प्रेमिका ऊजळी के प्रेम को वह बड़ी बेशर्मी के साथ भुला कर कहता है—

चारण अेटला देव, जोगमाया करी जाणीअे,
लोहीना खप्पर खपे, (तो) बुडे वरडा नो धणी।

[राजपूतों के लिए चारण देव तुल्य हैं। तुझे, चारण-कन्या को मैं जोगमाया (देवी) तुल्य मानता हूँ। तेरे जैसा लोहू का पात्र मैं पीऊं तो मैं बरडा पहाड़ का स्वामी नष्ट हो जाऊँगा।]

ऊजळी को अब अपने किए पर पछतावा होता है। सामाजिक लज्जा का भय उसे सताता है। जेठवा ने तो उसे ठुकरा दिया। वह अत्यन्त दुखी हो कहती है—

आवडियु अमे, जेठीराण जाणेल नहि,
(नीकर) पीयर पग ढाके, बेसत वरडा ना धणी।

[हे जेठवा, मैंने तेरी ऐसी अधमता नहीं जानी। अगर जानती तो अपने पैर ढक कर पीहर में ही रहती। अखंड कौमार्य्य व्रत ही धारण करती] यह कथन सत्य भी है। उस युग की मान्यताओं के अनुसार घर में पर्दे में रह कर ऊजळी अपनी लोक-लाज की रक्षा कर ही सकती थी। खुले ग्राम जेठवा के घर आकर तो वह लोक-दृष्टि में नीची ही ठहरी थी। उसे क्रोध है, दुख है और अपने प्रति ग्लानि भी।

जेठवा की मृत्यु होती है—वन-वन भटकती ऊजळी सुनती है। जेठवा को वह पति मान चुकी थी। सामन्ती मान्यताओं के अनुसार वह अपनी देह को किसके लिए जीवित रखती। वह पति की देह ठहरी। वह जेठवा के मृत शरीर के साथ जल जाती है। सती हो जाती है।

सामन्ती समाज की जाति-पाँति की सापेक्ष तौर में क्षीण मान्यताओं को तोड़ने वाली, प्रेम के शासन को ही मानने वाली विद्रोही ऊजळी, युगों से धर्मशास्त्रों द्वारा निर्मित स्वभाव में परिवर्तित शक्तिशाली सामन्ती मान्यताओं की शिकार हो जाती है।

किसी भी युग में शासक वर्ग की नैतिक मान्यताएं ही सारे समाज की नैतिक मान्यताएँ बनती हैं। प्रत्येक वर्ग उन्हीं मान्यताओं को अपनी मान्यताएँ बनाने की ओर प्रवृत्त रहता है ताकि उसका अपना सामाजिक स्तर ऊँचा उठ सके। ऊजळी के वर्ग की अपनी जातीय-प्रथाएँ थी और उन्हीं के अनुसार ऊजळी ने सह-शयन के द्वारा जेठवा की प्राण रक्षा की। लेकिन ऊजळी की सामाजिक प्रतिष्ठा शासक वर्ग की नैतिक मान्यताओं के स्तर तक पहुँचने की ओर ले जाने से ही रह सकती थी। निम्न वर्ग के लोगों में उच्च वर्ग की सामाजिक मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करने की प्रवृत्ति रहती है। इसी प्रकार के व्यवहार से उन लोगों का अपने समाज में विशिष्ट स्थान बन जाता है। ऊजळी ने भी सामन्ती समाज की नैतिक मान्यता

को पकड कर सारे समाज मे अपनी कथित प्रतिष्ठा को दृढ बनाया। जीवन भर अपने आपको जेठवा की पत्नी माना और उसकी मृत्यु पर सती हो गई।

मध्ययुग मे सती होने के लिए एक विशेष तौर का सामाजिक दबाव पडता था। अपने आपको उच्च मानने वाली स्त्रियां पति की मृत देह के साथ जल जाने मे अपने लिए विशेष प्रकार का सम्मान मानती थी। यह उनकी सम्मानित मजबूरी थी। ऊजळी भी सम्भवत इस भावना का शिकार हुई होगी।

रूमानी प्रेम—सामत-युग की अपनी विशेष देन है। ऊजळी और जेठवा का प्रेम अपने युग की इसी विशेषता का परिचायक है। प्रेम की तीव्रता के अनुरूप ही काव्य-कृति का निर्माण हुआ है।

नोट—इस लेख को लिखने मे निम्न पुस्तकों से सामग्री व पथ-प्रदर्शन प्राप्त हुआ है—

| | | |
|---|---|---|
| (१) मैरेज एण्ड मोरल्स | — | बर्ट्रेन्ड रसेल |
| (२) वीमेन एण्ड मैरेजेज् इन इंडिया | — | टी० थामस |
| (३) स्टडीज इन डाइग कल्चर | — | क्रिस्टॉफर कॉडवेल |
| (४) भारत | — | श्रीपाद अमृत डागे |
| (५) परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति व राजसत्ता (हिन्दी सस्करण) | | एफ एगेल्स |
| (६) मनुस्मृति | — | |
| (७) मार्क्सिज्म एण्ड पोइट्री | — | जॉर्ज थामसन |
| (८) सोरठी गीत कथाओ (गुजराती) | — | स्व० झवेरचन्द मेघाणी |
| (९) नारी का मूल्य | — | स्व० शरतचन्द्र चटोपाध्याय |